योगविद्या

वर्ष 10 अंक 10
अक्टूबर 2021
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2021

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो : युवा योग मित्र मण्डल का स्थापना दिवस कार्यक्रम, मुंगेर, 2 अक्टूबर 2021

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

प्रसन्नता का रहस्य

प्रसन्नता कैसे प्राप्त करें? वस्तुत: इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति की यही एक प्रमुख समस्या है। इस सत्य को जानो कि प्रसन्नता धन या सम्पत्ति पर निर्भर नहीं रहती। भौतिक संसाधनों और विषय भोगों से सुख, शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती। इसके विपरीत वे तृष्णा की वृद्धि करते हैं और चित्त को अशान्त करते हैं।

हे मानव! भ्रमित मत हो। तुम उस विशुद्ध आनन्द, अनन्त शान्ति और प्रसन्नता का अनुभव कर सकते हो, यदि तुम अपने अन्दर सुन्दर चिन्तन, अनुभव, विचार, कर्म, वाणी, विश्वास तथा आचरण का विकास कर सको। अपने जीवन को दिव्य बनाओ, उसे आध्यात्मिकता की ओर ले चलो। तुम अभी और इसी जन्म में अमर आनन्द के साम्राज्य में प्रवेश करोगे।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 10 अंक 10 अक्टूबर 2021
(प्रकाशन का 59 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 साधना के लिए योग्यताएँ
10 साधना में सिद्धि का रहस्य
14 क्रियायोग की परम्परा
22 मंत्र, यंत्र और मण्डल का विज्ञान
32 आशावादी बनो
35 एलर्जी और योग
38 दु:ख से मुक्ति
46 परमहंस सत्यानन्द – मेरी स्मृतियाँ
47 योग और आध्यात्मिक संस्कार

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

साधना के लिए योग्यताएँ

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

साधना के लिए आवश्यक गुणों को जानना साधक के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन काल से ही आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त सन्त और ऋषि-मुनि यह घोषणा करते आ रहे हैं कि यदि मुनष्य विषयासक्त जीवन से मुख मोड़कर उन्नत दिव्य जीवन के लिए प्रयत्नशील हो, तो वह महान् सुख, अपार शक्ति तथा असीम ज्ञान का अनुभव कर सकता है। फिर भी आज हम देखते हैं कि मनुष्य सांसारिकता में उतना ही निमग्न है जितना वह शताब्दियों पूर्व था। मानव-जाति आत्मिक जीवन के प्रश्नों के प्रति उतनी ही उदासीन तथा आलसी है जितनी कि सृष्टि के प्रारम्भ में थी। बहुत-से महर्षियों की घोषणाओं, सत् शास्त्रों के विश्वसनीय आवश्वासनों तथा मुनष्य के बारम्बार विषय-सुख की मिथ्यता-सम्बन्धी अनुभवों के होते हुए भी लोग बारम्बार धोखे में पड़ रहे हैं, ऐसा क्यों? मनुष्य ने साधना-पथ पर अभी तक चलना सीखा नहीं, ऐसा क्यों?

श्रद्धा की आवश्यकता

लोग सैकड़ों आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ते हैं, प्रवचनों को सुनते हैं। लेकिन वर्षों तक आध्यात्मिक ग्रन्थों के गम्भीर अनुशीलन, साधुओं की संगति तथा बारम्बार उपदेश-श्रवण के बाद भी मनुष्य रचनात्मक रूप से कुछ करता नहीं, क्योंकि उसमें साधुओं के उपदेशों तथा धर्मग्रन्थों के प्रति गम्भीर तथा स्थायी श्रद्धा नहीं है। बाह्य पदार्थों में उसकी श्रद्धा अधिक दृढ़ है। यदि मनुष्य की महापुरुषों में श्रद्धा होती, तो वह अवश्य उनके कथनानुसार चलता। श्रद्धा का अभाव ही साधना में विफलता का मूल कारण है। साधना आवश्यक है, किन्तु मनुष्य इसे करता नहीं क्योंकि इसकी आवश्यकता में उसे विश्वास नहीं है।

मनुष्य को इसमें विश्वास है कि सुख के लिए धन की आवश्यकता है। मनुष्य को विश्वास है कि यदि उसे अच्छी नौकरी मिल जाये तो उसे धन प्राप्त होगा। उसे विश्वास है कि यदि उसे कॉलेज-शिक्षा प्राप्त हो तो अच्छी नौकरी मिल सकती है और उससे धन और धन से इच्छानुसार सुख की प्राप्ति। इस पर विश्वास कर माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं तथा शैशवावस्था से ही उस बच्चे में यह विश्वास जमाया जाता है कि यदि वह अच्छे अंकों से परीक्षा में उत्तीर्ण होगा तो उसे अच्छी नौकरी मिलेगी। उसे अच्छा वेतन, मोटर-कार इत्यादि प्राप्त होंगे। वह इन बातों पर विश्वास करता है तथा परीक्षाएँ पास कर आशानुसार नौकरी प्राप्त करता है। परन्तु सभी मनुष्यों का यह निराशाजनक अनुभव है कि ऐसा सुख दशगुने दु:ख से मिश्रित है। मनुष्य एक आना सुख प्राप्त करता है और उसके साथ-साथ पन्द्रह आना दु:ख भी मिला होता है। दु:ख के लिए तो उसने कोई कामना ही नहीं की थी।

यदि मनुष्य को साधना के कार्यक्रम में विश्वास हो तो वह अवश्य तदनुकूल कार्य करेगा। इस विश्वास के अभाव में ही वह साधना नहीं करता। यदि मनुष्य को साधना-मार्ग का अवलम्बन करना है, यदि वास्तव में ही वह उस सुख को चाहता हे जो दु:खों से मिश्रित न हो, तो उसे निश्चय ही श्रद्धा पर आश्रित होना होगा। इसे अन्धविश्वास भी कह सकते हैं, परन्तु अन्धविश्वास नामक कोई वस्तु है ही नहीं, क्योंकि इस पृथ्वी की सभी वस्तुएँ विश्वास और पारस्परिक श्रद्धा पर ही अवलम्बित हैं।

यदि आज मनुष्य जी रहा है तो केवल पारस्परिक विश्वास एवं श्रद्धा के कारण ही। दस रुपये का नोट कागज का एक टुकड़ा ही तो है, परन्तु चूँकि उस पर राजा के सिर की तस्वीर है, इसलिये उससे आप बाजार से जो चाहे खरीद

सकते हैं। आपको इस कागजी टुकड़े में विश्वास है। यदि विश्वास न होता तो आप घर से बाजार के लिए निकलते ही नहीं और न कभी आप अपने उद्देश्य की पूर्ति में ही समर्थ होते। डॉक्टर आपको कागज के एक टुकड़े पर औषधि लिखकर देता है। यदि आपको विश्वास नहीं तो आप उससे यह टुकड़ा लेंगे ही नहीं। परन्तु श्रद्धा के कारण, जिस पर सारा समाज टिका है, आप उसकी बातों पर विश्वास करते हैं, उसके परामर्श के लिए उसे रुपये देते हैं, उस कागज को औषधि-विक्रेता के पास ले जाते हैं तथा औषधि खरीदकर रोग-मुक्त बनते हैं। सारा सामाजिक विधान श्रद्धा एवं विश्वास पर ही चलता है। यदि आप क्षणभंगुर और नित्य परिवर्तनशील मानव-जाति पर श्रद्धा रखने को तैयार हैं तो इन सब वस्तुओं के शाश्वत स्रष्टा भगवान के प्रति श्रद्धा रखने में झिझक क्यों?

अभ्यास में संलग्नता और निरंतरता

ऋषियों की वाणी पर श्रद्धा रखकर तथा साधना की आवश्यकता समझकर फिर क्या करना चाहिए? आपमें श्रद्धा हो सकती है, आपके सहस्रों हितैषी बहुत अच्छी-अच्छी सम्मतियाँ आपको दें और आपको उन पर पूर्ण विश्वास भी हो, परन्तु यदि आप उन्हें अभ्यास में न लायें तो वे योजना मात्र ही रह जायेंगी।

अत: साधना में श्रद्धा के उपरान्त अभ्यास की बारी आती है। आपको अभ्यास में लग जाना होगा। कवेल श्रद्धा ही पर्याप्त नहीं, श्रद्धा को कार्य-रूप में परिणत करना होगा। सन्तों की बात पर विश्वास रखकर आप साधना प्रारम्भ कर दें।

एक बार साधना प्रारम्भ कर लेने के पश्चात् दूसरी मुख्य बात ध्यान देने योग्य यह है कि आप उसे फिर त्याग न दें। संलग्नता बहुत आवश्यक है। संसार के समस्त विधान क्रमिक हैं। उनमें अवस्थाएँ हैं। कृषि क्रमिक है। इसमें बारह महीने लग जाते हैं। आपको बोना है, खेत की सिंचाई करनी है, मोथों को उखाड़ फेंकना है तथा समय आने पर फसल काटनी है। यदि आप अधीर हैं, बीज के अंकुरित होते ही यदि आप उसे भूमि से निकाल लें तो वह विनष्ट हो जायेगा। यदि आपको फसल प्राप्त करनी है तो धैर्य के साथ सारी अवस्थाओं से गुजरना होगा। कोई व्यक्ति कुएँ से पानी खींचते समय यदि अचानक रस्सी खींचना बन्द कर दे तो पानी का वह पात्र पहिए के सहारे पुन: कुएँ में जा गिरेगा। पात्र को तब तक खींचते जाना चाहिए जब तक कि वह ऊपर न आ जाये। साधना में तब तक संलग्न रहिए जब तक कि फल प्राप्त न हो जाये। आपको उसे त्यागना नहीं चाहिए।

अन्य मुख्य बात यह है कि आध्यात्मिक साधना में केवल सहायक शक्तियाँ ही काम नहीं करतीं, बहुत-सी विरोधी शक्तियाँ भी हैं जो साधक पर आक्रमण कर उसे नीचे घसीट लाती हैं। यहाँ साधक के लिए धृति आवश्यक अस्त्र का काम करती है। साधना में संलग्न रहते हुए मनुष्य को इतना तो साहस रखना ही चाहिए कि वह बाधाओं से न डिगे। उसे तूफानों का सामना करना पड़ेगा तथा विपरीत परिस्थितियों एवं कठिनाइयों से लड़ते हुए साधना के मार्ग पर अविचल रहना होगा। धृति के सहारे वह हतोत्साह नहीं होता तथा अन्तरात्मा पर आश्रित होकर साधना में अग्रसर होता है और अन्तत: वह उस आदर्श को प्राप्त कर लेता है जिसके लिए इस जगत् में उसका जन्म हुआ है। इस प्रक्रिया से गुजरते हुए उसे इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि वह मार्ग की छोटी-छोटी बातों पर भी विशेष ध्यान रखे, उनकी अवहेलना न करे। यदि ऐसा समझकर कि यह तो निरर्थक है कोई भी छोटी बात छूट गयी, तो उसे अन्त में पता चलेगा कि उसने व्यर्थ में ही अपना बहुतमूल्य समय तथा श्रम गँवाया है। इससे उन्नति में विलम्ब होता है। उच्च आदर्शों की प्राप्ति में छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देना अत्यावश्यक है क्योंकि उन्हीं के संग्रह से उच्च आदर्श की प्राप्ति होती है।

मानसिक संरक्षण

साधना करते समय साधकों को बाहरी शक्तियों की अपेक्षा आन्तरिक शक्तियों का ही अधिक सामना करना पड़ता है। रोगों के मामले में हम देखते हैं कि कुछ बाह्य परिस्थितियाँ कई बीमारियाँ उत्पन्न करती हैं। उन परिस्थितियों को दूर कर देने से वह बीमारी दूर हो जाती है, परन्तु यहाँ तो अधिकांश शक्तियाँ जिनका आपको विरोध करना है मानसिक ही हैं। इसलिये आपको अपने मन के एक भाग को इस तरह प्रशिक्षित करना होगा कि आपके आध्यात्मिक साधना, जप आदि में संलग्न रहते समय भी वह सावधानीपूर्वक निरन्तर पहरा देता रहे। ज्यों-ही कोई बुरा विचार या कोई बुरी शक्ति आपके मानसिक क्षेत्र में प्रवेश करना चाहे, त्यों-ही आपका यह संरक्षक उसे तुरन्त ही मार डाले। इसके लिए अनवरत साधना तथा अभ्यास की आवश्यकता है।

मन इतना ढीठ है कि जब-जब आप उसे किसी विशेष दिशा में ले जाना चाहेंगे, तब-तब उसके बुरे संस्कार आप को बाधा पहुँचायेंगे। अत: बड़ी उग्रतापूर्वक उसका दमन करना चाहिए। हमें अपने मानसिक संरक्षक को तैयार रखना चाहिए जिससे कि कोई विरोधी शक्ति प्रवेश न करने पाये। मानसिक संरक्षक के रहने पर साधना में बड़ी सुविधा होती है। यह गहरे समुद्र से गुजरने के समान है। साधक का जहाज शत्रुओं के समुद्र से होकर गुजरता है जिसके तल में विरोधी शक्तियाँ काम कर रही हैं। विश्व-युद्ध के समय समुद्र पर चलने वाले जहाजों को शत्रु जल के अन्दर चुम्बकीय पदार्थों के सहारे डुबा देते थे। चुम्बकीय आकर्षण से बचने के लिए जहाज को चुम्बक-विसंवाहक बना दिया जाता था जिससे कि वे चुम्बक की ओर आकृष्ट न हों। ठीक इसी प्रकार साधकों को भी अपने मन को विषय-पदार्थों के आकर्षणों से विसंवाहक बनाना होगा। मुमुक्षुत्व तथा ईश्वर में श्रद्धा – ये दोनों विसंवाहक का काम करेंगे। जब आपकी दृष्टि ऊँची नहीं है, आप विषय-सुखों के स्तर पर ही हैं, तब आप विषय-पदार्थों की ओर आकृष्ट हो जाते हैं और ये विषय-पदार्थ आपकी प्रगति को नष्ट कर डालते हैं। मन को इनकी ओर से विसंवाहक बना लेने के पश्चात् आपको अपने आदर्श को अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बना लेना चाहिए।

साधक की बहुत-सी वस्तुओं की ओर दिलचस्पी हो सकती है जैसे पारिवारिक परिस्थितियाँ, समाज, वातावरण आदि, परन्तु जिस प्रकार सैनिकगण पहले से ही अपनी तोपों के मुख लक्ष्य की ओर लगा कर उसे आगे से चलाते हैं, उसी प्रकार साधक को भी अपने आदर्श की ओर ही लक्ष्य

रखना होगा। हर स्थिति में साधक को मोक्ष को ही अपना लक्ष्य बनाये रखना होगा। यह विचार इतना गहरा जम जाना चाहिए कि अनेकानेक बाधाएँ भी उसे लक्ष्य से डिगा न सकें। राग-द्वेष से तरंगायमान जगत् में काम करते हुए इस बात पर ध्यान रखिए कि आपके अन्दर एक शक्ति बराबर काम करती रहे, जिससे आपकी आन्तरिक अवस्था दिव्य, समत्वपूर्ण तथा आध्यात्मिक बनी रही। कर्म होते रहेंगे, शक्तियाँ आप पर आघात-प्रतिघात करेंगी, लेकिन आपको ऐसी कला जाननी होगी जिससे कि आप पर उनका कोई प्रभाव न हो।

जब मनुष्य बाह्य शक्तियों की ओर प्रतिक्रिया करता है तभी वह विफल होता है जिसके परिणाम-स्वरूप उसे कष्ट उठाने पड़ते हैं। आपके अन्दर मशीनगन की तीव्रता है। पलभर में ही अनेकानेक गोले छूट पड़ते हैं तथा मशीनगन का बैरेल अधिकाधिक परितप्त हो जाता है। राग, द्वेष, क्रोध तथा लोभ के सम्पर्क में आने पर हमें यह देखना है कि संघर्ष हमें सन्तप्त न कर डाले। भगवान के शीतल नाम तथा भगवद्-चिन्तन को सदा अपने साथ रखिए। यह हमारी प्रकृति को सदा शीतल बनाये रखेगा। इससे आध्यात्मिक सन्तुलन सदा बना रहेगा।

युद्ध-काल में शत्रु-पक्ष के सैनिकों को बंदी बना लिया जाता है और उन्हें अपने पक्ष में लगाया जाता है। ठीक इसी प्रकार अपनी बुरी आदतों को रूपान्तरण के तरीके से अपने हित के लिए लगाया जा सकता है। हममें दोष-दृष्टि का स्वभाव है। हम सर्वत्र दोष ही ढूँढ़ निकालने का प्रयास करते हैं। यह साधकों का बड़ा भारी दोष है। इससे आध्यात्मिक उन्नति रुक जाती है, किन्तु यह आदत छूटती नहीं। यदि इस आदत को साधक अपने प्रति लागू करे तो वह इससे अपना बड़ा हित कर सकता है। जब वह अपने दोषों के प्रति सजग हो जाएग तो उसे दूसरे के दोष देखने का मौका ही नहीं मिलेगा। तब वह दूसरों के स्वल्प सद्गुण का भी प्रशंसक बन जायेगा।

साधना में सिद्धि का रहस्य

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

साधकों के लिए एक चेतावनी है। अपनी साधना की आलोचना-समालोचना मत करो। मन में दबी हुई, स्वार्थपूर्ण इच्छा रखकर साधना नहीं करो। उच्च साधकों को इन चीजों का ख्याल रखना चाहिये। अपनी साधना की तुलना अपने पारिवारिक, सामाजिक और राजनैतिक जगत् से नहीं करो। बाहर के जगत् में तुमको अपना कार्य और कर्त्तव्य पूर्ववत् कुशलता से निभाते चलना चाहिए।

बाहर के जगत् और अन्दर के जगत् को बुद्धि से मिलाने की कोशिश से तुम्हारे मन में अन्तर्द्वन्द्व होगा। इससे अन्त:करण में ग्रन्थियाँ पड़ेंगी, जो ध्यान में विक्षेप उत्पन्न करेंगी। विक्षेप दो प्रकार के होते हैं – बाह्य विक्षेप और आंतरिक विक्षेप, दोनों से ही साधक को अपने को बचाना चाहिए।

बाह्य जगत् में हमें पूरे कर्म-कौशल के साथ ही अपने कर्म को करना चाहिए। यदि पूरी कुशलता के साथ काम करने की इच्छा एवं आदत और साथ-साथ साधना का अभ्यास भी जारी रहेगा, तो उसी कर्म-साधना के माध्यम से प्राप्त दिव्यत्व को बाहर निकलने का मौका मिल सकेगा। साधक को साधना के विषय में किसी प्रकार का संकल्प-विकल्प नहीं करना चाहिए। केवल गुरु और साधना पर श्रद्धा रखकर अपना काम समझकर करते जाना चाहिए। बाह्य जगत् में साधक यदि अपने सभी दायित्वों को यथाशक्ति निभाता जाएगा, तो मन में कभी अन्तर्द्वन्द्व नहीं होंगे। अन्तर्द्वन्द्व साधना का सबसे बड़ा शत्रु है। जो साधक इस प्रकार आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं, उनके लिए सभी आवश्यकताएँ और सुयोग समय पर भगवान स्वयं जुटाते जाते हैं। साधक को अपनी सभी इच्छाओं और चिन्ताओं का बोझ भगवान पर छोड़कर कर्म और साधना में जुट जाना चाहिए।

इन दोनों कार्यों को करने से मानसिक सन्ताप या अन्तर्द्वन्द्व होता ही नहीं, जो प्राय: साधना के मार्ग पर चलने वालों को हुआ करता है। इस तरह अन्दर और बाहर, दोनों में शुद्धता रह सकेगी और साधना में आशातीत प्रगति भी हो सकेगी। अन्तर्द्वन्द्व, चिन्ता, अनावश्यक सोचने की आदत, ये सब मन के मैल हैं, जिन्हें कर्मों द्वारा शुद्ध करने की बात शास्त्रों ने कही है। परन्तु मैंने देखा

है कि बुद्धि से तो मनुष्य सब कुछ समझ लेता है, और उन्हें ठीक भी मान लेता है, फिर भी कर्म और व्यवहार में इन विचारों को नहीं ला पाता। इसका कारण है इच्छा-शक्ति की कमी और दृढ़ निश्चय का अभाव।

फिर भी यदि इच्छा-शक्ति को ही बढ़ाने की साधना की जाये, तो वह ठीक नहीं। साधना में सब कुछ स्वयं प्राप्त हो जाता है। सबसे सरल, सीधा और संक्षिप्त रास्ता है, गुरु में श्रद्धा। केवल गुरु में श्रद्धा और विश्वास से सभी अनिवार्य योग्यताएँ और विशेषताएँ अपने आप चली आती हैं। गुरु एक अनुभवी सहयात्री होता है। उसे मार्ग का पूरा पता रहता है। जो काम मनुष्य स्वयं नहीं कर पाता, उसे गुरु के आदेश-मात्र से करने में समर्थ हो जाता है, क्योंकि गुरु में उसकी श्रद्धा और भक्ति होती है। इसलिए गुरु को साधना पथ में अनिवार्य माना गया है।

यद्यपि अक्षर ज्ञान एक सामान्य सी बात है, पर छोटा-सा बालक उस कार्य को अध्यापक के बिना यदि अकेला ही पूर्ण करना चाहे, तो नहीं कर सकता,

भले ही वह कितना मेधावी क्यों न हो। यदि कोई रोगी अपने आप ही अपने रोग का इलाज करने लगे, तो उसमें भूल होने की सम्भावना रहेगी। अत: अनुभवी चिकित्सक की शरण लेनी ही पड़ती है। ठीक इसी तरह आध्यात्मिक मार्ग में गुरु की आवश्यकता पड़ती है।

साधक अपने गुण-दोष, मानसिक स्तर तथा आध्यात्मिक विकास का पता भी अपने आप नहीं लगा सकता। अनुभवी गुरु ही इस सम्बन्ध में मार्गदर्शन कर सकता है और उसी के द्वारा उद्धार एवं कल्याण का मार्ग मिल सकता है। जिसने रास्ता स्वयं देखा है, मंजिल तक पहुँचा है या जिसने मंजिल पार कर ली है, वही रास्ते की सुविधा-असुविधा को जानता है। नये पथिक के लिए ऐसे अनुभवी व्यक्ति की सलाह जरूरी है।

साधना का मार्ग तलवार की धार के सदृश है। जब शिष्य साधना में अग्रसर होता है, तब अनेक बाधाएँ तथा पुराने संस्कार विघ्न डालते हैं। साधक दिशा भूल जाता है। उसकी बुद्धि ऊब जाती है। ऐसे समय पर गुरु के मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है। सिद्ध गुरु चेतना की उच्च भूमिका में रहते हैं। अत: ऐसे समय पर गुरु का मार्गदर्शन मिल जाता है। यदि शिष्य में गुरु के प्रति समर्पण की भावना है, तो गुरु क्षणभर में मोक्ष तथा असीम ज्ञान का मार्ग खोल सकते हैं। इन्हीं अद्भुत शक्तियों के कारण सभी प्राचीन शास्त्रों में गुरु में एक साथ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की क्षमता बतलाई गई है। शिवपुराण में कहा गया है –

यो गुरु: स शिव: प्रोक्तो य: शिव: स गुरु: स्मृत:।
तस्माद्धि श्रीगुरोर्भक्ति: भुक्ति-मुक्ति-प्रदायिनी॥

शिष्य की गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा होनी चाहिए और गुरु भी ऐसे हों कि वे आत्म-कल्याण का मार्ग ही न बतलाएँ, वरन् उस पर चल सकने योग्य साहस, बल और उत्साह का संचार करें। इसलिए गुरु का चयन करते समय उनकी विद्या ही नहीं, आध्यात्मिक स्तर, तप, त्याग आदि संगृहीत पूँजी को देखना पड़ता है। यदि वे इन गुणों से सम्पन्न न हों तो उन्हें अध्यात्म मार्ग का उपदेशक भले ही कहा जा सकता है, गुरु नहीं। परन्तु शिष्य का भी यह कर्त्तव्य है कि यदि वह वशिष्ठ, व्यास, द्रोणाचार्य, रामकृष्ण और शिवानन्द की तरह सिद्ध गुरु चाहता है तो उसे भी राम, एकलव्य, आरुणि और विवेकानन्द की तरह शिष्य बनना होगा।

गुरु भी शिष्य को अच्छी तरह परख कर उसकी पात्रता का मूल्यांकन करते हैं। यदि शिष्य गुरु के मापदण्डों के अनुरूप न हो तो उसे उच्च ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। गुरु शिष्य की अनेक विधियों से परीक्षा लेकर उसकी क्षमताओं तथा गुरु-भक्ति की परख करता है, ताकि उसका परिश्रम व्यर्थ न जाए। कभी-कभी गुरु आध्यात्मिक साधना एकदम बन्द कराकर केवल शारीरिक परिश्रम कराता है। कभी प्यार देता है और कभी घोर उपेक्षा करता है, उससे बात करना तो दूर रहा, उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। ऐसे समय पर शिष्य का धैर्य टूट जाता है, वह गुरु का अपमान करने लगता है। उसके

मन में अनेकानेक सन्देह भाव उठने लगते हैं, परन्तु गुरु का शिष्य के साथ आन्तरिक सम्बन्ध बहुत ऊँचे स्तर का होता है। इन सब परीक्षाओं के पीछे सच्चाई कुछ और होती है, वह उच्च साधनाओं के लिए शिष्य के मन को तैयार करता है।

इस प्रकार गुरु, शिष्य को भौतिक स्तर से आध्यात्मिक स्तर तक पहुँचने का मार्गदर्शन करते हैं। योग्य शिष्य को दिव्य प्रकाश तथा ज्ञान से सम्पन्न कर लोक मंगल के लिए तैयार करते हैं। गुरु की महत्ता पर आदिगुरु शंकराचार्य ने शतश्लोकी में लिखा है – 'इस त्रिभुवन में ज्ञानदाता सद्गुरु के लिए देने योग्य कोई दृष्टांत भी दिखलाई नहीं देता। उन्हें पारसमणि की उपमा दें, तो भी यह ठीक नहीं जँचती। पारस तो लोहे को सोना बना देता है, पर पारस नहीं बनाता। परन्तु सद्गुरु शिष्य को अपने समान ही बना देते हैं।'

गुरु में श्रद्धा और हर काम में एकाग्र-भक्ति – यही है साधना में सिद्धि का रहस्य।

क्रियायोग की परम्परा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

जुलाई 2021 में स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती द्वारा युवा योग मित्र मण्डल के सदस्यों को दिए गए योग शिक्षा सत्र का तीसरा सत्संग

योग शास्त्र में मानव को मात्र भौतिक शरीर के रूप में नहीं देखा जाता, बल्कि माना जाता है कि भौतिक शरीर के साथ अन्य शरीर भी हैं। इन विभिन्न शरीरों को योग की भाषा में अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष कहते हैं। अन्नमय कोष का मतलब भौतिक पदार्थ से बना शरीर। प्राणमय कोष का तात्पर्य ऊर्जा, स्फूर्ति और शक्ति से है। मनोमय कोष का अर्थ मानसिक अवस्था, विज्ञानमय कोष का मतलब चेतना का अनुभव और आनन्दमय कोष का मतलब आत्मा का आयाम है। इन पाँच शरीरों से हमलोगों का यह देह निर्मित होता है और इन पाँच शरीरों को जगाना है। हठयोग अन्नमय कोष और प्राणमय कोष के लिये है। शरीर और उसकी प्राणिक ऊर्जा का संतुलन उसी से प्राप्त होता है। राजयोग मनोमय कोष के लिये है। इससे मन को संतुलित और व्यवस्थित किया जाता है। इसके बाद तीसरा योग, क्रियायोग विज्ञानमय कोष के लिये है।

जब अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोष एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं और उनकी ऊर्जा जागृत हो जाती है तब आनन्दमय कोष की अनुभूति अपने आप होती है। हमें भूख लगती है, हम भोजन करते हैं और उसका परिणाम होता है तृप्ति। इसी तरह जब हम क्रियायोग के द्वारा विज्ञानमय कोष को जगाते हैं तो उसका परिणाम होता है आनन्द की अनुभूति, आत्मा की अनुभूति या जीवन की उच्च अवस्था की अनुभूति। ये उच्च अनुभूतियाँ तब होती हैं जब हम इस भौतिक तिकड़म को पार कर जाते हैं।

क्रियायोग का इतिहास

योग का पहला उद्देश्य शारीरिक स्वास्थ्य और संतुलन को प्राप्त करना है। योग का दूसरा उद्देश्य है मानसिक स्पष्टता, विवेक और सकारात्मकता की प्राप्ति। फिर योग का तीसरा पक्ष आता है जिसका सम्बन्ध चक्रों और कुण्डलिनी शक्ति के साथ है। चक्र और कुण्डलिनी हमारी चेतना के सूक्ष्म स्विच हैं जिनको ऑन कर देने से शरीर, मन, भावना और चेतना के अतीन्द्रिय आयाम में कुछ परिवर्तन होता है। क्रियायोग की साधना चक्रों और कुण्डलिनी से आरम्भ होती है। इस प्रक्रिया में पहले चक्रों में प्राणों का जागरण किया जाता है, जिसको योग की भाषा में प्राणोत्थान कहते हैं। उसके बाद चक्रों का जागरण और अन्त में कुण्डलिनी शक्ति का जागरण किया जाता है। इस प्रकार क्रियायोग के ये तीन उद्देश्य होते हैं – प्राणोत्थान, चक्र जागरण और कुण्डलिनी जागरण। इस प्रक्रिया का अन्त तब होता है जब सभी चक्र जागृत हो जाते हैं और कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार से सहस्रार तक पहुँच जाती है। यह चेतना की जागृति की सबसे उच्च अवस्था मानी गयी है।

क्रियायोग की परम्परा वास्तव में हिमालय से शुरू होती है। जो साधु-तपस्वी वहाँ रहते हैं वे शारीरिक स्वास्थ्य या मानसिक शान्ति के लिये नहीं रहते, बल्कि चेतना की उच्च अवस्था प्राप्त करने के लिए साधना करते हैं। उन्होंने कुछ चक्रों को जगा लिया होता है जिसके कारण उनको कुछ सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। आखिर –20 डिग्री तापमान में एक योगी मात्र कौपीन पहनकर रहे, यह सामान्य व्यक्ति के लिये तो संभव नहीं। भारतीय सैनिकों को हिमालय पर्वतों में बहुत-से ऐसे साधु मिलते हैं जो घनघोर बर्फ के बीच मात्र कौपीन पहनकर बैठे रहते हैं। क्या खाते हैं, क्या पीते हैं, क्योंकि वहाँ पर घास भी नहीं उगती। प्राण पर ही जीते हैं। यह ऐसे साधुओं की एक परम्परा है जो

दुर्गम स्थानों में रहकर साधना करते हैं, चक्रों को जगाते हैं और उनके जागरण से कुछ सिद्धि प्राप्त करते हैं।

क्रियायोग की परम्परा हिमालय से शुरू होती है और इसके मूल योगी महावतार बाबाजी माने जाते हैं। महावतार बाबाजी शिवजी ही हैं जो सोलह साल के युवा रूप में समय-समय पर आते हैं, लोगों को दर्शन देते हैं और क्रियायोग की पद्धति सिखाते हैं। बहुत लोग आज भी बाबाजी का दर्शन प्राप्त कर पाते हैं।

सन् 1989 के कुम्भ मेले में हम अपने गुरुजी के साथ प्रयागराज गये थे। वहाँ पर हमलोग घूम रहे थे तो कुछ दूरी पर एक नागा साधु दिखायी दिये। स्वामीजी उनकी ओर संकेत करके कहते हैं कि देखो भाई, ये महावतार बाबाजी हैं। हमने कहा कि हमलोग चलते हैं, उनसे मिलते हैं, पर स्वामीजी ने कहा, 'नहीं, अभी रहने दो, वे दूसरी मनोवस्था में हैं। पर वे महावतार बाबाजी हैं।' गुरुजी जैसे लोग उनको पहचान भी जाते हैं। हमारे लिए वे मात्र नागा साधु थे, लेकिन जब गुरुजी ने संकेत किया और हमने उनकी ओर ध्यान से देखा तो सामान्य व्यक्ति नहीं लगे। उनके शरीर में जो ऊर्जा और तेज था वह उस कुम्भ मेले में उपस्थित करोड़ों लोगों में से किसी में नहीं दिखा।

यही वे बाबाजी हैं जिन्होंने लहिरी महाशय को क्रियायोग की शिक्षा दी थी और उन्हीं की परम्परा में श्री युक्तेश्वर जी और परमहंस योगानन्द जी आते हैं। लेकिन यह गुप्त परम्परा है, सबके लिये नहीं है। इसके लिये पात्रता का होना अत्यन्त आवश्यक है। साधक को अधिकारी होना पड़ता है क्योंकि जब हम क्रियायोग के अभ्यास करते हैं तो हमारे भीतर के सभी संस्कार और कर्म बाहर निकलते हैं, उनका क्षय होता है। जिस समय यह सब कचड़ा बाहर निकलता है उस समय गुरु के प्रति अटूट विश्वास होना चाहिए और उनके निर्देशों का पालन लकीर का फकीर बन करके होना चाहिए ताकि अपने भीतर की कलुषता से हम अपने आपको मुक्त कर सकें। इस कारण क्रियायोग की परम्परा को हमेशा गुरु और शिष्य के बीच प्रत्यक्ष शिक्षा के रूप में देखा गया। कोई किताब नहीं, कोई कक्षा नहीं। गुरु ही देखता है कि शिष्य में पात्रता है कि नहीं, तभी उसे क्रियायोग सिखलाता है। क्रियायोग की इस परम्परा का एक बीज योगदा सत्संग सोसाइटी में है जो परमहंस योगानन्द जी की संस्था है। वहाँ पर इस क्रियायोग को गुप्त रखा गया है। सिखाते वही हैं, लेकिन इस शर्त पर कि कोई किसी और को नहीं बतलायेगा।

मस्तिष्क के सुषुप्त केन्द्रों की जागृति

सन् 1954 में स्वामी शिवानन्द जी ने स्वामी सत्यानन्द जी को क्रियायोग की दीक्षा दी और साधना बतलाई। गुरुजी बतलाते हैं कि जब वे ऋषिकेश में अपने गुरु आश्रम में थे तो एक रात उनको स्वप्न आया। स्वप्न में देखते हैं कि एक बहुत बड़ा शहर है जिसमें मकान वगैरह सब बने हुए हैं, लेकिन वहाँ पर न तो बिजली है, न कोई आदमी है। वहाँ पर सब कुछ तैयार है, आदमी को घर जाकर केवल बसना है। दूसरे दिन गुरुजी स्वामी शिवानन्द जी के पास जाते हैं और कहते हैं, 'स्वामीजी रात को मैंने ऐसा स्वप्न देखा, समझ में नहीं आया इसका क्या मतलब है।' स्वामी शिवानन्द जी ने कहा, 'तुमने स्वप्न में अपने ही मस्तिष्क को देखा है। वह नगर तुम्हारा मस्तिष्क है, वहाँ पर सब कुछ है, लेकिन जगा नहीं है, बिजली नहीं है, प्रकाशित नहीं है। किसी ने उन मकानों में प्रवेश भी नहीं किया है।' स्वामी शिवानन्द जी ने बहुत सुन्दर वैज्ञानिक बात संक्षेप में कही। विज्ञान के अनुसार मनुष्य मस्तिष्क का केवल दसवाँ भाग काम करता है, बाँकी नो भाग सोये पड़े हैं। मतलब भवन वगैरह सब तैयार हैं, लेकिन वहाँ कुछ होता नहीं है। वहाँ बत्ती नहीं जलती है, वहाँ पर आदमी की पहुँच नहीं है।

किसी भी क्षेत्र में जीनियस या विलक्षण प्रतिभा एक जागृत मस्तिष्क की पहचान है। हमारे गुरुदेव हमेशा कहते थे कि जीनियस का मस्तिष्क जगा रहता है। काश्मीर में पंडित गोपी कृष्ण नामक साधक थे जिनकी अस्सी के दशक में मृत्यु हुई। उन्होंने गहन साधना की और फिर अपने आध्यात्मिक अनुभवों पर एक किताब लिखी। वे लिखते हैं कि 'क्रियायोग की साधना के कुछ समय पश्चात् मेरे भीतर धीरे-धीरे अलग-अलग प्रतिभाएँ विकसित होने लगीं जिनमें एक थी संगीत। अगर कोई मेरे सामने कुछ गा दे, राग अलाप दे तो मैं भी हुबहू वैसा स्वर हारमोनियम पर निकाल सकता था, जबकि मैंने संगीत की कोई शिक्षा नहीं ली, कभी जाना नहीं कि राग और रागिनी क्या है। वह प्रतिभा कुछ महीनों तक रही, फिर गायब हो गयी। उसके बाद फिर चित्रकारी। अचानक तूलिका उठाई, रंग भरने लगा और बहुत सुन्दर तस्वीर बन गई। मैंने इस तरह के बहुत प्रयोग किये। जो चीज मैं बिल्कुल नहीं कर सकता था उसे मैंने करके देखा और एकदम पूर्णता के साथ, क्योंकि मेरे चक्र और कुण्डलिनी उस समय जगे हुये थे।'

हमारा भी एक ऐसा अनुभव हुआ था जब हम अमेरिका में रहते थे। वहाँ पर क्रिसमस से नव वर्ष तक छुट्टी का समय होता था, और उस समय हम आश्रम में ताला लगाकर तम्बू लेकर जंगल में चले जाते थे। वहाँ कुछ अच्छी साधना करने के लिये एक सप्ताह का समय मिलता था। सन् 1982 के दिसम्बर महीने में हम वहाँ के एक नेशनल पार्क गए। वहाँ जंगल के बीच अपना तम्बू गाड़ दिया और अपना अभ्यास शुरू किया। दो दिन जम करके अच्छे से अभ्यास हुआ। तीसरे दिन जब अभ्यास करके हम सोने के लिये अपने तम्बू में बिस्तर पर लेट गये तो हमें संगीत सुनाई पड़ने लगा। हमने सोचा कि कहाँ से आवाज आ रही है! तम्बू से अपना सिर निकालकर देखा कि बगल में कोई आदमी तो नहीं आया है किसी गाड़ी में। वहाँ कोई नहीं था, लेकिन संगीत की आवाज बराबर आ रही थी। फिर अपनी गाड़ी में बैठकर हेड लाइट ऑन की, गाड़ी को पूरा घुमाया, लाइट से चारों तरफ देखा, लेकिन कहीं कुछ नहीं था। फिर भी संगीत की आवाज आ रही थी। आधे घंटे तक हम खोजते रहे, लेकिन संगीत का कोई उद्गम मिला ही नहीं।

अन्त में थककर अपने तम्बू में वापस आये तो अचानक मन में विचार आया कि यह आवाज कहीं अपने दिमाग से तो नहीं आ रही है! जैसे रेडियो के डायल को घुमाकर आवाज घटाते-बढ़ाते हैं, वैसे ही खेल-खेल में हमने

प्रयास किया तो आवाज कम हो गई, उसको घुमाया तो आवाज बढ़ गई! हमने सोचा, 'ठीक है, यह हमारी खोपड़ी की चीज है, हम पागल नहीं हुए हैं। जो अभ्यास किये उनका यह परिणाम है।' आप विश्वास करो या न करो, छ: महीने तक हमारे भीतर संगीत की अद्भुत प्रतिभा जागृत रही। कोई किसी गीत की एक लाइन गा दे, हम पूरा गीत गा सकते थे। कोई हारमोनियम पर एक लाइन बजा दे, हम पूरे गाने को हारमोनियम पर बजा सकते थे। देशी हो या विदेशी, शास्त्रीय हो या लोकप्रिय, सब प्रकार का संगीत हारमोनियम पर अपने आप निकल आता था। छ: महीने तक हमने खूब मस्ती की, फिर वह चीज खत्म हो गई क्योंकि अभ्यास को कायम नहीं रख पाये। पर यह अनुभव हमें अवश्य हुआ।

शिवालय के बगल में जब बिहार योग विद्यालय के पहले आश्रम का निर्माण हुआ तो वहाँ पर सबसे पहले बनी कुटिया का नाम था क्रियायोग कुटीर। वहीं पर गुरुजी लोगों को क्रियायोग की दीक्षा और शिक्षा देते थे, लेकिन एक-एक करके और पात्रता को देखकर। एक महिला साधिका को संगीत नहीं आता था, लेकिन दस दिन क्रियायोग का अभ्यास करने के बाद वे कहने लगीं कि मुझे वीणा खरीद दो। वीणा खरीदने के दस दिन बाद वे ऐसे ढंग से वीणा बजाने लगीं जैसे जिन्दगीभर वीणा बजाया हो! मुंगेर में बहुत-से लोगों का क्रियायोग के सम्बन्ध में ऐसा अनुभव रहा है।

परमहंस सत्यानन्द की क्रियायोग परम्परा

इन उदाहरणों से हम यह समझाने का प्रयास कर रहे हैं कि क्रियायोग एक बहुत शक्तिशाली विधि है और यह परम्परा बाबाजी से चली आ रही है। जब 1954 में स्वामीजी को यह स्वप्न आया और स्वामी शिवानन्द जी ने स्वप्न का अर्थ समझाते हुए कहा कि यह तुम्हारे सुषुप्त मस्तिष्क का प्रतीक है तो उन्होंने यह भी बताया कि मस्तिष्क के सुषुप्त केन्द्रों को जगाने के लिये क्रियायोग की विधि है। फिर स्वामी शिवानन्द जी ने स्वामीजी को क्रियायोग की शिक्षा दी।

मुंगेर आने के बाद स्वामीजी ने 1970 से लेकर तीन साल तक हर महीने पत्रिका प्रकाशित की जिसमें क्रियायोग की शिक्षा पोस्टल कोर्स के माध्यम से दी गई। यह एक ऐतिहासिक घटना है, क्योंकि उस समय क्रियायोग कोई बतलाता नहीं था। मुंगेर पहला स्थान था जहाँ से तीन साल तक क्रियायोग का पोस्टल कोर्स संचालित हुआ।

इसलिये अब विश्व में क्रियायोग की दो पद्धतियाँ प्रचलित और मान्य हैं – एक परमहंस योगानन्द जी की और दूसरी परमहंस सत्यानन्द जी की। दोनों में अन्तर केवल इतना है कि उन लोगों ने क्रियायोग की विद्या को गुप्त रखा है, और स्वामीजी ने पत्रिका के माध्यम से इस विद्या को सब तक पहुँचाया। उस जमाने में संभव भी था क्योंकि उस समय की मानसिकता आज से अलग थी।

स्वामीजी ने हमलोगों को क्रियायोग की जो पद्धति सिखाई, उसे तीन भागों में बाँटा – प्रत्याहार, धारणा और ध्यान की पद्धति। इन तीन पद्धतियों का चक्रों में प्राणों को जगाने के लिये सीधा असर पड़ता है। जैसे गाड़ी चलाने के लिए तैयार खड़ी हो तो पहले इंजन को स्टार्ट करना होता है, वैसे ही हमारे शरीर के भीतर मूलाधार चक्र तो तैयार है ही लेकिन उसे उद्दीप्त करने के लिये पहले इंजन को स्टार्ट करना पड़ता है। मूलाधार और स्वाधिष्ठान में जो इंजन स्टार्ट होता है उसको कहते हैं प्राणोत्थान की अवस्था। उस समय चक्रों के तंत्र में ऊर्जा का संचार होने लगता है। प्राणोत्थान पहली स्थिति है जो संभव होती है प्रत्याहार क्रियाओं के द्वारा। दूसरी अवस्था आती है चक्र जागरण की। उसके लिये धारणा क्रियाओं का उपयोग होता है, क्योंकि उसमें एकाग्रता, मानस दर्शन और मंत्र जैसी बहुत चीजों का समावेश किया जाता है। अन्त में फिर ध्यान क्रियाओं का अभ्यास होता है जो कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार से सहस्रार चक्र तक ले जाती हैं जहाँ पर फिर शिव और शक्ति का मिलन होता है। इस प्रकार स्वामीजी ने क्रियायोग को इन तीन वर्गों में विभाजित किया।

देखा जाए तो क्रियायोग सबसे छोटा योग है। हठयोग बहुत बड़ा है, उसमें बहुत सारे आसन, प्राणायाम, मुद्राएँ, बन्ध और षट्कर्म हैं, लेकिन क्रियायोग छोटा है, इसमें मात्र बीस अभ्यास हैं। इन्हीं बीस अभ्यासों से हम अपने सूक्ष्म और कारण शरीर को जगा पाते हैं, चक्रों को उद्दीप्त कर पाते हैं। स्वामीजी ने हठयोग, राजयोग और क्रियायोग को साधना में आगे बढ़ने के लिये एक विधि के रूप में हमलोगों के सामने प्रस्तुत किया है। बहुत लोग हठयोग में जाकर सन्तुष्ट हो जाते हैं कि हमारे लिए इतना पर्याप्त है। बहुत लोग राजयोग तक आते हैं और शान्त हो जाते हैं कि हमारे लिये इतना पर्याप्त है। कुछ लोग क्रियायोग तक आते हैं, लेकिन अगर समय नहीं मिल पाता है या विक्षेप बहुत हो जाता है, मन बँट जाता है तो ठीक तरीके से कर भी नहीं पाते हैं। अगर गाड़ी चलानी है तो पूरी निष्ठा के साथ क्लच, ब्रेक, एक्सलेरेटर, गियर, स्टियरिंग, लाइट, बल्ब, हॉर्न – सब चीजों पर नियंत्रण होना चाहिये। एक भी चीज पर नियंत्रण नहीं हुआ तो दुर्घटना हो सकती है। क्रियायोग भी गाड़ी चलाने की तरह है। यह आसन-प्राणायाम की तरह नहीं है कि सबेरे थोड़ा बहुत पवनमुक्तासन का अभ्यास कर लिया, उसके एक घंटे बाद प्राणायाम कर लिया। इसमें अगर हम प्रवेश करते हैं तब फिर जब तक अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेते तब तक हमें चलते रहना है। इसलिये स्वामीजी ने अन्तिम साधना के रूप में इसे योग चक्र का अंग बनाया। जिसे शारीरिक समस्या का निदान चाहिये वह हठयोग करे, जिसे मानसिक समस्या का निदान चाहिये वह राजयोग करे, और जो आध्यात्मिक चेतना को जागृत करना चाहता है वह क्रियायोग करे। ये तीनों योगचक्र के साधनात्मक योग हैं।

– 17 जुलाई 2021, गंगा दर्शन

मंत्र, यंत्र और मण्डल का विज्ञान

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

आन्तरिक ज्ञान को पूर्ण बनाने के लिए तंत्र शास्त्र यंत्र, मंत्र और मण्डल का प्रयोग एक साथ करता है। तंत्र का अनूठापन इस बात में है कि यह एक उत्कृष्ट दर्शन के साथ एक व्यावहारिक विज्ञान भी है। व्यावहारिक और दैनिक उपयोग का रास्ता दिखाये बिना यह उच्च सिद्धान्तों का दावा नहीं करता। मंत्र, यंत्र और मण्डल के विकसित विज्ञान के द्वारा उसे प्राप्त किया जाता है जो इसके दर्शन में जटिलता से बुना गया है। साधना में इस उत्कृष्ट कृति का उपयोग करने के लिए हमें इन तीनों की प्रक्रिया को समझना आवश्यक है।

मंत्र विज्ञान

मंत्र शब्द दो अक्षरों के मेल से बना है, 'मन्' जो 'मनन' को सूचित करता है और `त्रा' जिसका अर्थ है मुक्ति। इस प्रकार मंत्र का शाब्दिक अर्थ होता है, ऐसा चिन्तन जो मुक्ति की ओर ले जाता है – *मननात् त्रायते इति मंत्रः*। एक ध्वनि जो मुक्ति की ओर ले जाय, इसकी सम्भावना ज्यादातर लोगों को अविश्वसनीय लगती है, क्योंकि ध्वनि की शक्ति को कम करके आँका गया है और इसे सिर्फ स्थूल ध्वनि से सम्बन्धित माना गया है। लेकिन बहुत तेज ध्वनि एक शीशे को तोड़ दे सकती है या एक हिमस्खलन की भी शुरुआत कर सकती है। ध्वनि का प्रभाव पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों पर भी होता है।

सृष्टि के सिद्धान्त में तंत्र, वेदान्त, सांख्य और अन्य भारतीय दर्शनों के अनुसार नाद या ध्वनि ही सृष्टि की पहली अभिव्यक्ति है। बाईबिल में भी हमें यह कथन मिलता है – 'प्रारम्भ में शब्द था और शब्द ईश्वर के साथ था।' पहला शब्द है ॐ जिसका वर्णन ब्रह्माण्डीय ध्वनि के रूप में किया जाता है। ॐ मंत्र का निरन्तर जप चेतना के विभिन्न स्तरों को उत्प्रेरित करता है और उसका विस्तार करता है। हर मंत्र और ध्वनि ॐ से जन्म लेती है जो कि वातावरण में गूँजता अनन्त नाद है। सही उपकरण की मदद से व्यक्ति आस-पास के वातावरण में व्याप्त अनन्त ध्वनि और अपने अन्दर की ध्वनि एक साथ सुन सकता है। वह पाएगा कि ॐ ध्वनि, जिसे प्रणव मंत्र भी कहते हैं, के साथ इसकी आश्चर्यजनक समानता है।

संस्कृत वर्णमाला इक्यावन अक्षरों से बनी है और वास्तव में प्रत्येक अक्षर अपने आप में एक मंत्र है और उसका व्यवहार इस तरह से किया जा सकता है। अक्षर का अर्थ होता है, जिसका क्षय न हो, जो अनन्त ध्वनि से सम्बन्धित है, जो ब्रह्माण्ड में अत्यन्त सूक्ष्म आवृत्तियों में हमेशा गूँजता रहता है। यही कारण है कि संस्कृत स्तोत्र चेतना की उच्च अवस्था को उत्पन्न करके मन और चेतना की रूपरेखा को बदल देते हैं। संस्कृत अक्षर और शब्द ऐसे ऊर्जा केन्द्रों से सम्बन्धित हैं, जो मस्तिष्क के केन्द्रों से सीधे जुड़े हुए हैं। सही स्वरोच्चारण उन बिन्दुओं पर दबाव डालता है और चेतना को परिवर्तित कर देता है। यदि कोई चेतना की गहराई तक उतरना चाहे, जहाँ संस्कार और कर्म जमा रहते हैं तो उसे नियमित रूप से जप करना चाहिए।

मंत्र और शुद्धिकरण

आध्यात्मिक विकास के लिए मंत्र सबसे आवश्यक है क्योंकि यह प्रक्रिया को बहुत प्रभावोत्पादक ढंग से तेज कर देता है। तंत्र शास्त्र दावा करता है कि आध्यात्मिक साधना की पहली जरूरत शुद्धि है। शुद्धि के बिना व्यक्ति एक बिन्दु पर बहुत लम्बे समय तक अटका रहता है। शरीर की शुद्धि के लिए वह मंत्र, आसन और प्राणायाम का सुझाव देता है और मन की शुद्धि के लिए

अन्तर्मौन, अजपाजप, योगनिद्रा, तत्त्व शुद्धि और क्रियायोग के अभ्यास की। ये पद्धतियाँ प्रभावशाली रूप से स्थूल-शरीर और सूक्ष्म-शरीर को शुद्ध करती हैं। परन्तु कारण-शरीर कैसे शुद्ध करें जहाँ कुछ भी पहुँच नहीं सकता?

यदि व्यक्ति ध्यान में आगे बढ़ना चाहे तो इस स्तर पर शुद्धिकरण सबसे महत्त्वपूर्ण है। एकमात्र शक्ति जो व्यक्ति के अस्तित्व की सबसे गहरी परत में प्रवेश कर सकती है वह है नाद या मंत्र ध्वनि। कारण-शरीर मंत्र के प्रति तुरंत प्रतिक्रिया करता है। यह प्रतिक्रिया वैसी ही है जैसे किसी व्यक्ति ने माँ के गर्भ में या अपनी शैशवावस्था में कोई गीत सुना है। बहुत बाद में जब वह अचानक कभी कहीं वही गीत सुनता है, तब तुरन्त उस ध्वनि के प्रति आकर्षित हो जाता है। सम्भव है कि उसे याद न भी हो कि उसने इसे पहले सुना है।

कारण-शरीर लोकोत्तर नाद की आश्चर्यजनक ध्वनियों के साथ लयबद्ध है जो शक्ति के भण्डार हैं। इन विशिष्ट अक्षरों को मातृका कहते हैं और यह मंत्र का सबसे शक्तिशाली रूप है। इन्हें बीज मंत्र भी कहते हैं। यह मूल ध्वनि है, जिससे दूसरे मंत्रों ने जन्म लिया है। यह धारणा गलत है कि मंत्र ईश्वर का नाम है। वह बीज रूप में ध्वनि ऊर्जा है जिसे चेतना की गहराई में बोया जाता है। वहाँ वह एक गति पैदा करती है जिससे सब कुछ सतह पर आ जाता है। यदि किसी को कूड़े से भरे वीरान घर को साफ करना पड़े, तब सबसे पहले वह सब कुछ बाहर करेगा, तब झाड़ू देगा, धूल झाड़ेगा और मकड़ी के जालों को हटाएगा। इसके बाद वह सब काम की वस्तुएँ लाएगा, उन्हें ठीक से सजाएगा। उसी प्रकार मंत्र का अभ्यास, कारण स्तर पर सम्पूर्ण आत्मा को शुद्ध करके उसे सजाने का साधन है।

तंत्र के अनुसार शरीर में अनेक विशेष ऊर्जा केन्द्र या बिन्दु स्थित हैं। भौतिक शरीर के हरेक अंग के लिए एक अनुकूल मंत्र है जिनसे इन केन्द्रों को प्रभावित किया जा सकता है। न्यास के तांत्रिक अभ्यास में इन मंत्रों का प्रयोग किया जाता है जिसमें मंत्रों को पद्धतिबद्ध तरीके से शरीर के विशेष केन्द्रों और अंगों पर रखा जाता है जिससे शरीर उच्चतम शक्तियों के आधान के रूप में परिणत हो जाए। श्वास की गति से भी एक ध्वनि पैदा होती है जो एक मंत्र ही है, जिसे सोहम् कहते हैं। यह मंत्र सहज रूप से हरेक श्वास के साथ एक दिन में 21,600 बार जपा जाता है और इसे अजपा मंत्र के नाम से जाना जाता है। उपनिषद् कहते हैं कि एकमात्र इस मंत्र का ध्यान कुण्डलिनी को जाग्रत कर सकता है और ज्ञान प्रदान कर सकता है।

यंत्र की प्रक्रिया

सिक्के के दो पहलुओं की तरह मंत्र और यंत्र पूर्णत: अभिन्न हैं। हरेक मंत्र के अनुकूल एक यंत्र होता है जिसका उपयोग चेतना को एकाग्र करने के लिए तब किया जाता है, जब मंत्र के अभ्यास द्वारा वह चेतना शरीर के पदार्थ से मुक्त हो जाती है। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो चेतना की कोई दिशा नहीं होती और वह बिखरने लगती है। वह वापस गिर भी सकती है या अंधकार में भी प्रवेश कर सकती है। यंत्र शब्द यम् धातु से बना है, जिसका अर्थ है रुकना, नियंत्रण करना, संतुलित करना अथवा एक शक्तिशाली ऊर्जा को एक बिन्दु पर केन्द्रीकृत करना।

अणु और परमाणु जो पदार्थ बनाते हैं, उन्हें यंत्र की तरह समझा जा सकता है, क्योंकि वे परमाणु ऊर्जा के पूर्ण निर्मित भण्डार हैं। प्रत्येक परमाणु के अन्दर अन्तहीन ऊर्जा है और तांत्रिक साधना का उद्देश्य इस सुषुप्त ऊर्जा को जाग्रत करना है। वह बिन्दु जहाँ ऊर्जा को अणु या परमाणु के रूप में सम्भाला जाता है और जहाँ यह व्यक्त होता है उसे यंत्र कहते हैं। इस अर्थ में मानव शरीर के मेरुदण्ड में स्थित चक्र भी यंत्र हैं। इन केन्द्रों पर ध्यान को एकाग्र करने से व्यक्ति को महान् अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति हो सकती है। उदाहरण के लिए यदि व्यक्ति उस केन्द्र पर ध्यान लगाने में सफल हो जाय जो दृष्टि को नियन्त्रित करता है, तब वह दूर की जगहों और घटनाओं को भी देख सकता है। इसी प्रकार इन्द्रियाँ भी यंत्र हैं, जिनका विस्तार करके उनकी अन्तर्निहित ऊर्जा को मुक्त किया जा सकता है ताकि वस्तु के अभाव में भी व्यक्ति स्वाद, स्पर्श, दृश्य, सुनने या सूँघने का अनुभव कर सकता है। देखा जाए तो व्यक्ति का पूरा शरीर ही एक यंत्र है जिसमें ब्रह्माण्डीय परमशक्ति की असीम ऊर्जा निवास करती है।

यंत्र की सहायता के बिना जाग्रत ऊर्जा को उच्चतर प्रयोजन के लिए निर्देशित और केन्द्रीकृत करना असम्भव है। यंत्र रेखा, वर्ग, त्रिभुज, वृत्त और बिन्दु जैसी ज्यामितीय आकृतियों के संयोजन से बनता है। यंत्र का केंद्र हमेशा बिन्दु ही होता है, जो उस बीज का प्रतिनिधित्व करता है जिससे सृष्टि ने जन्म लिया है और जिसमें वह वापस लौटेगी। तंत्र और सांख्य के अनुसार विकास की योजना में नाद, बिन्दु और कला की अंतर्क्रीड़ा से सृष्टि जन्म लेती है। बिन्दु ही वह स्थल है जहाँ से स्पंदन, नाद, कला और प्रकाश के अंश जगते हैं। जैसे नाद मंत्रों को जगाती है, वैसे ही कला, जो प्रकाश की किरणों की तरह

निकलती है, यंत्र को जगाती है। यह संसार, ध्वनि और प्रकाश की एक-दूसरे से अन्तर्क्रिया का परिणाम है। विज्ञान भी ऐसा ही कहता है।

यद्यपि यंत्र प्रतीकात्मक है, परन्तु आध्यात्मिक अनुभव के सम्बन्ध में इसका बहुत महत्त्व है। जिस आन्तरिक चेतना को हम पाना चाहते हैं वह तर्कों और शब्दों के पार चिह्नों और प्रतीकों में प्रकट होती है। जिस प्रकार काँटे को निकालने के लिए व्यक्ति को काँटें का इस्तेमाल करना चाहिए, उसी प्रकार ये गोपनीय और रहस्यमय प्रतीक आन्तरिक जगत् से सम्बन्धित हैं और वह भी प्रतीकों का ही संसार है। चेतन मन द्वारा इस प्रक्रिया को समझना कठिन हो सकता है, पर प्रक्रिया तो होती ही है, चाहे हम समझ न पाएँ कि क्या हो रहा है।

फ्रांस के स्कूलों में छ: से बारह वर्ष के बच्चों की स्मृति, बुद्धि और अन्तर्निहित क्षमता को सुधारने के लिए यंत्रों का इस्तेमाल किया गया। कुछ समय के लिए कक्षा की दीवारों पर यंत्रों को लगाया गया। कभी-कभी चित्रकारी की कक्षा में बच्चों को उन यंत्रों की नकल करने को कहा जाता था, परन्तु इसके अतिरिक्त बच्चों का ध्यान यंत्रों की ओर जबरदस्ती नहीं खींचा गया। बच्चों के मस्तिष्क में इसका सूक्ष्म प्रभाव प्रवेश कर रहा था क्योंकि हर समय यंत्र उनकी अप्रत्यक्ष दृष्टि में था। जो बच्चे कक्षा में यंत्र के प्रभाव में थे उनकी क्षमता, व्यवहार, ध्यान और याद्दाश्त में विशेष सुधार दिखा। वे शांत, स्थिर और प्रसन्न थे, जबकि पहले वे बेचैन और अशान्त स्थिति में थे, जिससे उनके सीखने की क्षमता में भी रुकावट हो रही थी।

यंत्र सृजनात्मक और सहजज्ञान सम्बन्धी बुद्धि को प्रभावित तो करते हैं, परन्तु उनका वास्तविक प्रयोजन आध्यात्मिक अनुभव का प्रस्फुटन है। व्यक्ति के सम्पूर्ण अस्तित्व की परतों के धीरे-धीरे खुलने से इस अनुभव को पाया जा सकता है। यंत्रों को बालू, मिट्टी, चाँदी, ताँबा, पीतल, सोना, शीशा या कागज पर भी बनाया जा सकता है। हरेक माध्यम का अपना महत्त्व है। इन सब यंत्रों में सबसे प्रभावशाली और सर्वतोमुखी श्रीयंत्र है जो स्वयं में पूर्ण है क्योंकि यह ब्रह्माण्ड के साथ हमारे सम्बन्ध को प्रकट करता है।

मण्डल का सिद्धांत

ध्वनियाँ तरंगें पैदा करती हैं और जब ये तरंगें घनीभूत हो जाती हैं तब वे लकीरें बनाती हैं जिनसे वर्ग, त्रिकोण या वृत्त बनते हैं। इस प्रकार मंत्र, यंत्र में रूपान्तरित हो जाता है। यंत्र मंत्र की सूक्ष्म छवि है जो साधक को अपरिमित

शक्ति के जागरण में मदद करती है। यंत्र साधक की मानसिक ऊर्जा को इस प्रकार केन्द्रित करता है कि वह इसे मंत्र की शक्ति के साथ जोड़ सकता है। जैसे केन्द्रीभूत चेतना साधक को मंत्र में निपुणता हासिल करने में सहायता करती है, वैसे ही यंत्र, मंत्र के द्वारा आन्तरिक ज्योति का अनुभव जाग्रत करने में सहायता करता है। यंत्र और मंत्र दोनों प्रकाशित चेतना को जाग्रत करने के उपकरण हैं। मंत्र विज्ञान के अनुसार यदि कोई किसी ध्वनि के अर्थ पर ध्यान लगाता है और साथ ही एकाग्र रहता है तब जिस वस्तु पर वह ध्यान लगा रहा है, वह उसके समक्ष प्रकट हो जाती है। यह त्रिआयामी वस्तु जो व्यक्ति के समक्ष मंत्र की शक्ति से प्रकट होती है उसे मण्डल के नाम से जाना जाता है।

इस प्रक्रिया को मानस दर्शन कहते हैं। विचार और मानस दर्शन दो पूर्णत: भिन्न प्रक्रियाएँ हैं। पहली पूर्णत: मन पर निर्भर है और दूसरी केवल तब शुरू होती है जब हम मन के परे जाते हैं। जब तक मन क्रियाशील रहता है, व्यक्ति सोच सकता है, परन्तु मानस-दर्शन नहीं कर सकता। मानस-दर्शन प्रारम्भ होता है जब मन धीमा पड़ जाता है और विचार कम होने लगते हैं।

मानस-दर्शन बहुत रचनात्मक प्रक्रिया है। जो व्यक्ति स्पष्ट रूप से मानस-दर्शन कर सकता है, उसकी समझ का स्तर निश्चय ही उच्चतर होगा। मानस-दर्शन में निपुणता हासिल करने के लिए व्यक्ति को सबसे पहले विचारों के प्रवाह को कम करना सीखना होगा। विचार बिखरी हुई ऊर्जा है जो व्यक्ति को अन्दर देखने से रोकती है। यदि व्यक्ति इस बिखरी हुई ऊर्जा को एकाग्र कर सके जो लाखों विचारों के रूप में जागती है, तब मानस-दर्शन द्वारा मण्डल का साक्षात्कार सम्भव होता है।

आशावादी बनो

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

निराशावाद समाज में जल्दी छाने वाली निर्बलता है। किसी भी वस्तु की बुराइयों को ही देखा करना, 'संसार में दु:ख ही है' इस प्रकार के विचारों में डूबे रहना, कर्महीन हो जाना, जीवन में आयी हुई विफलता के परिणामस्वरूप निराश हो जाना – इन सबसे मनुष्य का जीवन अन्धकारमय हो जाता है, उसे रास्ता दृष्टिगोचर नहीं होता।

किसी भी वस्तु के सकारात्मक पक्ष को भूल कर उसके अवगुणों या दोषों पर विचार-विमर्श करते रहना, अप्रयोजनीय और असन्दर्भशील विचारों में लवलीन रहना निराशावाद के सिद्धान्त का मुख्य रूप है। 'सारा संसार दु:खमय है', यह भावना निराशावाद की प्रतीक है। जीवन को दु:खमय देखने में एक प्रकार की प्रतिक्रिया होती है और मनुष्य उस प्रतिक्रिया के चक्कर में आ जाता है।

एक समय बुद्धवाद भी समाज के लिए निराशावाद का माध्यम बन गया था। तब आदिगुरु शंकराचार्य ने आकर तत्कालीन सिद्धान्तों का विरोध किया। शंकराचार्य अद्वैतवाद के प्रवर्तक थे। संसार उनके लिए नश्वर था, किन्तु संसार की सच्ची सत्ता जिस पर वे विश्वास करते थे, तीनों कालों में सत्, चित् और आनन्द का पूर्ण रूप थी। उनके मत के अनुसार यह दिखने वाला संसार वास्तव में संसार नहीं, किन्तु संसार पर ब्रह्म का प्रतिरूप था। ब्रह्म के अतिरिक्त संसार की सत्ता को न मान कर

शंकराचार्य ने यह सिद्ध किया कि जो दिखलायी देता है, सुना जाता है, देखा जाता है, सूँघा जा सकता है और इन्द्रियगम्य, बुद्धिगम्य तथा ज्ञानगम्य है, वह सब परब्रह्म का ही रूप है। उन्होंने यह भी बतलाया कि ब्रह्म को इस समष्टि में से निकाल दिया जाय तो तीनों कालों और तीनों अवस्थाओं में कुछ भी न रहेगा। ब्रह्म सत्-चित्-आनन्द आदि गुणों से युक्त है, अत: यह समष्टि जगत् भी उन्हीं गुणों से परिपूरित होना चाहिए। इस प्रकार वेदान्त में 'नेति-नेति' और नश्वरवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किये जाते हुए भी हमें निराशावादिता का कोई लक्षण नहीं मिलता।

सांसारिक क्षुद्र भोगों से मनुष्य को हटाने के लिए ही वैराग्य का सिद्धान्त प्रतिपादित किया जाता है। समाज को गलतियों से हटाने के लिए ही सच्चरित्रता का उपदेश दिया जाता है। मनुष्य को पदार्थवाद से ऊपर उठाने के लिए ही पदार्थ की नश्वरता का उपदेश दिया जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो मनुष्य अपनी सीमा में ही फिरता रहेगा।

आशावाद, क्रियात्मकवाद, व्यवहारवाद और यथार्थवाद निराशावाद की प्रतिपक्षीय भावनाएँ हैं। इन गुणों से सम्पन्न हुआ मनुष्य प्रत्येक वस्तु के सत्य-पक्ष को ही पहले देखेगा। आशावादी मनुष्य किसी के अवगुणों को न देख कर, उसके गुणों को ही पहले देखेगा। आशावादी मनुष्य पहले किसी चित्र की सुन्दरता का दर्शन करेगा और निराशावादी उसके दोषों का।

निराशावादी मनुष्य सदा निर्बल रहता है, उसकी मस्तिष्क-सम्बन्धी क्रियाएँ निश्चेष्ट हो जाती हैं। जिस घर में एक मनुष्य भी निराशावादी हुआ, वह सारे का सारा घर निराशावादी हो जाता है, वहाँ कालिमा-सी छा जाती है। निराशावादी मनुष्य पहले तो कोई काम हाथ में लेगा ही नहीं, यदि ले भी लिया तो यह सोचकर कि 'होना तो कुछ नहीं है, चलो आजमा लें'। इस प्रकार मनोविज्ञानानुसार असफलता का जन्म कार्यारम्भ से पूर्व ही हो जाता है।

हर अवस्था में प्रसन्न और खुशदिल रहो। रंज और गम को जीतो। चाहे आपके भाग्य में विफलताएँ ही क्यों न हों, चाहे आपने ठोकरें ही क्यों न खायी हों, लेकिन हर रोज अँधेरा नहीं रहता, सूर्य उदय होता ही है। इसी प्रकार किसी-न-किसी दिन सफलता मिलेगी ही। यदि साहसी रहोगे और प्रत्येक कार्य को आत्मविश्वास से करोगे तो वह कौन-सी बला है, जो तुम्हारे मार्ग पर पत्थर रख सके। तुम्हारे संकल्प की शक्ति उस पत्थर को तो क्या, पहाड़ को भी फूँक से उड़ा सकती है, सागरों को सुखा सकती है, पर्वतों को चलायमान कर

सकती है। साहस चाहिए, सच्चा साहस; लगन और अथक लगन; रात और दिन कर्मपरायणता। विश्राम केवल अरथी में सोने के बाद ही मिल सकता है।

आशा जीवन में सफलता की जननी है। वह ठोकर खाये हुए बालक को फिर खड़ा कर देती है, तुतलाते हुए बच्चे को अच्छी तरह बोलना सिखाती है। आशावादी मनुष्य पर विपत्तियाँ आयेंगी नहीं, यह कहना सर्वथा गलत है। विपत्तियों के बावजूद भी जो मनुष्य अपनी लगन में लगा रहता है, वही सफल होता है और उसे ही आशावादी कहते हैं।

जप, कीर्तन, आसन, प्राणायाम, कर्मयोग, सेवा, दान आदि से आशाओं का विकास करो। सदा काम करते रहो, आलसी न बैठो। सदा अच्छे ही काम करो। ध्यान के नाम पर एकान्त कमरे में बैठ कर हवाई किले बनाना साधना नहीं है। कमरे से बाहर आ जाओ, समाज में सेवा करने के लिए, नदी के तीर सन्ध्या-वन्दन और पूजा-आराधना के लिए।

दान का फल

गरमी के दिन थे, धूप तेज थी, पृथ्वी जल रही थी। महाराज भोज के राजकवि किसी आवश्यक कार्य को सम्पन्न करके नगर की ओर लौट रहे थे। मार्ग में उन्होंने देखा कि एक दुर्बल मनुष्य नंगे पैर लड़खड़ाता हुआ चल रहा है। उसके पैरों में संभवत: छाले पड़ गये थे। कवि के कोमल हृदय से यह देखा नहीं गया। आज वे भी पैदल ही थे, परन्तु उस पुरुष के पास जाकर उन्होंने अपने जूते उतार दिये और बोले, 'भाई! तुम इन्हें पहन लो।'

कवि को कभी नंगे पैर चलने का अभ्यास नहीं था, उनके पैरों में शीघ्र ही छाले पड़ गये, परन्तु वे एक दु:खी प्राणी की सेवा करके प्रसन्न थे। इसी समय राजा के हाथी को महावत उधर से ले आ रहा था। राजकवि को पहचानता तो था ही, उसने उन्हें हाथी की पीठ पर बैठा लिया। संयोग ऐसा हुआ कि उस दोपहरी में ही राजा भोज नगर में निकले थे। नगर में प्रवेश करते ही कवि और नरेश की भेंट हो गयी। नरेश ने हँसी में ही पूछा – 'आपको यह हाथी कहाँ से मिल गया?' कवि ने उत्तर दिया, 'राजन्! मैंने अपना पुराना जूता दान कर दिया, इस पुण्य से इस समय हाथी पर बैठा हूँ। जिस द्रव्य का दान नहीं हुआ, वह व्यर्थ है।' उदार नरेश ने वह हाथी कवि को दे दिया।

एलर्जी और योग

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

नाड़ी मंडल के असंतुलन अथवा अति संवेदनशीलता के कारण एलर्जी होती है। किसी विशेष ज्ञानेन्द्रिय संवेग के प्रति नाड़ी मण्डल या मस्तिष्क का अति सक्रियता से उत्तेजित होना एलर्जी के लक्षणों के लिये जिम्मेदार है। इसी के फलस्वरूप चर्म, नासिका और जिह्वा के स्पर्श, गंध व रस सम्बन्धी एलर्जी होती है। अगर थोड़ी गहराई से सोचोगे तो तुम्हें पता चलेगा कि इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार की एलर्जी होती है। जब ज्ञानेन्द्रियाँ उत्तेजक प्रतिक्रियाएँ करती हैं तो वह भी तो आखिर एलर्जी ही है। किसी गंध के प्रति जब नाक प्रतिकूल प्रतिक्रिया करती है तब उसे गंध की एलर्जी कहेंगे। इसी प्रकार स्वाद के प्रति एलर्जी भी है, लेकिन सभी एलर्जी में सबसे सामान्य है – नाक की एलर्जी। तारकोल या पेट्रोल सूँघते ही एलर्जी का अनुभव हो सकता है। जब किसी विशेष फूल को सूँघने से नाक में अरुचिकर अनुभव होता है तब वह एक अन्य प्रकार की एलर्जी है।

मैं इस विषय पर सोचता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि और भी बहुत प्रकार की एलर्जी हैं, जिनके बारे में हमें ख्याल नहीं है या जिन्हें हम एलर्जी के रूप में नहीं मानते, जैसे, किसी खास ध्वनि के प्रति एलर्जी होने से दोनों कनपटियों में पीड़ा होने लगती है। कुछ लोगों के प्रति भी एलर्जी होती है और उन्हें देखते ही घृणा होती है। जीवन की कुछ खास परिस्थितियों से हमें एलर्जी होती है, इसलिये हम उसे टालने की हर संभव चेष्टा करते रहते हैं। इसलिये डॉक्टरों के द्वारा स्वीकृत एलर्जी तक ही नहीं सोचना चाहिये, क्योंकि एलर्जी और कई प्रकार की हैं तथा इनके अन्तर्गत बहुत-सी चीजें आती हैं।

बहुत वर्षों पूर्व की बात है, मुझे दीर्घकाल तक एक विचित्र एलर्जी ने परेशान कर रखा था। जब कभी मैं किसी आदमी को नये फैशन के वस्त्रों में देखता था तब मुझे ऐसे लोगों से एलर्जी हो जाती थी। यह इतनी तीव्रता से होता था कि मैं बहुत परेशान रहता था। इसलिये मैंने कहा कि एलर्जी कई प्रकार की होती है।

मूल रूप से एलर्जी एक मानसिक धारणा है। लेकिन उसके साथ ही निश्चित रूप से शरीर का भी योगदान रहता है। हमारा असंतुलित पूर्वनियोजित मानसिक दृष्टिकोण नाड़ी मण्डल की गतिविधियों को तीव्र और उत्तेजित कर देता है। यह तब होता है जब हम किसी विशेष संवेग को ग्रहण कर रहे होते हैं और इसका प्रभाव प्रतिक्रिया के रूप में हमारे उस प्रतिरक्षा मण्डल पर पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप, हिस्टेमिन या दूसरे प्रकार के एलर्जी वाले रसायन हमारे तंतुओं और रक्त में पहुँचते हैं तो हम छींकना या हिचकी लेना शुरू करते हैं, आँखों में पानी भर आता है अथवा हमारे कानों में सनसनी होने लगती है या चर्मरोग के रूप में त्वचा में जलन आदि होने लगती है।

जब मैं आठ बरस का था तब एक दिन सुबह कहीं रास्ते में विष्ठा देख ली। मुझे ऑप्टिक एलर्जी, याने आँखों की एलर्जी हो गई। आँख की पलक के ऊपर एक फुंसी निकल आई। इसका कारण मुझे मालूम नहीं पड़ा। कुछ समय बाद वह ठीक भी हो गई, परन्तु जब कभी मैं विष्ठा देखता, फुंसी फिर हो जाती। यह क्रम कुछ समय तक चलता रहा, परन्तु अब ऐसा नहीं होता। अत: मस्तिष्क और नाड़ी-मण्डल, दोनों को प्रशिक्षित करने की जरूरत है।

यह अप्रिय या प्रतिकूल इन्द्रिय अनुभव के प्रति संवेदनशील न होने की सहज प्रक्रिया है। ये सभी संवेदनाएँ नाड़ी-मण्डल में से होती हुई दिमाग तक पहुँचती हैं। वहाँ से वे आगे संचारित कर दी जाती हैं – सम्बन्धित तंत्र की ओर। वहाँ से हमारे भौतिक स्थूल शरीर पर कोई-न-कोई प्रतिक्रिया होती है।

इस क्रम को पर्याप्त प्रशिक्षण द्वारा दिशान्तरित किया जा सकता है।

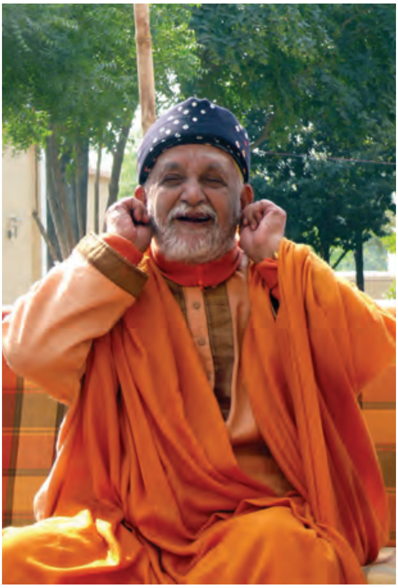

मुझे एक दूसरा अनुभव भी हुआ था। हिमालय में एक स्थान है – फूलों की घाटी। वहाँ कई प्रकार के फूलों की किस्में मिलती हैं। वहाँ का मनोरम दृश्य अगस्त, सितम्बर और अक्टूबर में देखते ही बनता है। कई मीलों तक विभिन्न प्रकार के सुन्दर मोहक फूल-ही-फूल मिलेंगे। कुछ फूलों को मैंने सूँघना शुरू किया और उस रात मुझे भयंकर पेट दर्द होने लगा। अपने साथ वाले लोगों को मैंने बताया कि मुझे असहनीय उदरशूल हो रहा है। वे लोग कहने लगे, 'हम लोग फूलों को सूँघने से सबको मना करते हैं, आपने कहीं कोई फूल तो नहीं सूँघ लिया? यह दर्द उसी के कारण हुआ है।' उस घटना ने मेरे दिमाग में एक स्थायी याददाश्त छोड़ दी। आज भी लोग जब फूल लाकर मुझे भेंट करते हैं तब मैं उन्हें एक किनारे रख देता हूँ। मैं उनकी खूबसूरती को खूब जानता हूँ और साथ-साथ उनकी पीड़ा को भी!

एलर्जी सिर्फ नाक तक सीमित नहीं है। किसी भी इन्द्रियानुभूति से उसका सम्बन्ध हो सकता है। उसकी प्रतिक्रिया शरीर के किसी भी अंग पर हो सकती है। नाक की एलर्जी के लिये एक अच्छी चिकित्सा उपलब्ध है। गंध सफेदा (यूकेलिप्टस) के कुछ पत्तों को उबलते पानी में डाल दो और उनकी सुगंध को श्वास से खींचो। इसके कुछ पौधे अपने आँगन में या घर के आस-पास लगाकर रखो। यह एलर्जी दूर करने के लिये रोज सुबह जलनेति और प्राणायाम करो, संभव हो तो शीर्षासन भी करो। मन के पूर्वाग्रह और अति संवेदनशीलता को ठीक करने में योगनिद्रा निस्संदेह बहुत उपयोगी है, लेकिन सबसे जरूरी चीज है उस असंगति या प्रतिकूलता की भावना को समझना और दिशांतरित करना, जो एक अप्रशिक्षित मन में स्वाभाविक रूप से होती है।

दु:ख से मुक्ति

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

शास्त्रों में एक राजा की कहानी आती है, जिसने लंबे समय तक राज्य किया। उसने राजा के सभी कर्त्तव्य निभाये, अपनी प्रजा का पालन किया, अपने राज्य में खुशी, समृद्धि, शांति लाने के लिए उसने हर प्रकार का प्रयत्न किया। फिर भी वह हमेशा अनुभव करता रहा कि उसकी प्रजा अशांत और दु:खी है। उसने स्वयं को भी हमेशा अशांत और दु:खी अनुभव किया। राजदरबार में सभी लोग परेशान, दु:खी और अशांत नजर आते थे। उसकी समझ में नहीं आया कि सुख-समृद्धि के रहते हुए भी लोगों में अशांति और दु:ख क्यों है, लोगों का चित्त चंचल क्यों है। अपने प्रश्न के समाधान के लिए वह अनेक साधु-महात्माओं को बुलाता था, लेकिन उसके प्रश्नों का समाधान कोई नहीं कर सका। समय बीता और राजा ने युवराज को राज्य सौंपकर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया। जंगल में कुटिया बनाकर वह जप, ध्यान, पूजा आदि करने लगा और खाली समय में संसार के स्वभाव के बारे में चिन्तन।

संसार का स्वभाव

एक दिन जब वह अपनी कुटिया के बाहर बैठा हुआ था, एक बूढ़ा आदमी उसके सामने आया और उसे नमस्कार किया। राजा ने भी खड़े होकर उसका अभिवादन किया और दोनों ने एक-दूसरे का हाल-चाल पूछा। बूढ़े आदमी ने राजा से पूछा, 'आप यहाँ पर क्यों आए हो?' राजा कहता है कि मैं युवराज को गद्दी सौंपकर वानप्रस्थ जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। अपना समय जप, अनुष्ठान और साधना में बिताता हूँ, और बाकी समय चिन्तन करता हूँ कि संसार में दु:ख, अशांति, चंचलता क्यों है।

बूढ़ा कहता है, 'राजन्! यह चिन्तन तो आप कभी भी कर सकते हैं। अभी हमारे साथ थोड़ा जंगल में घूमने चलिये।' और राजा उस वृद्ध व्यक्ति के साथ जंगल में घूमने निकल पड़ता है। घूमते-घूमते जब धूप तेज हो जाती है और शरीर से पसीना छूटने लगता है, तब राजा को थका देख वृद्ध कहता है, 'महाराज, आप इस पेड़ के नीचे विश्राम कर लीजिए।' ऐसा कहकर उसने राजा को एक पेड़ के नीचे बिठा दिया।

राजा देखता है कि उस पेड़ पर एक भी फूल, फल या पत्ता नहीं है। वह पेड़ काँटों से भरा हुआ था। हवा चलने पर पेड़ की डालियाँ आपस में टकराकर अपने काँटों को नीचे गिराती थीं। जब राजा उस पेड़ के नीचे जाकर बैठा, तब हवा के साथ उसके शरीर पर पेड़ के काँटे गिरकर चुभने लगे। राजा बड़े असमंजस में पड़ गया और सोचने लगा, 'लगता है कि बूढ़े का दिमाग सरक गया है। इस जंगल में इतने सारे पेड़ हैं जो पत्तों, फूलों और फलों से लदे हुए हैं, लेकिन इसे आराम करने के लिये काँटेदार पेड़ ही दिखा!'

राजा कुछ देर तो बैठा रहा, लेकिन जब काँटों की चुभन सहन नहीं हुई, तब वह उठकर चलने लगा। उसे उठते देखकर वृद्ध कहता है, 'क्या हुआ? बैठे रहिये!' राजा कहता है, 'कहाँ बैठूँ? इस पेड़ के नीचे बैठता हूँ तो काँटे शरीर पर गिरकर चुभते हैं।'

वृद्ध कहता है, 'राजन्! जो प्रश्न आपके मन में इतने वर्षों से घूम रहा है, उसी का मैं उत्तर दे रहा हूँ। निश्चित रूप से इस जंगल में बहुत-से छायादार पेड़ हैं, लेकिन मैंने एक बात समझाने के लिए आपको इस पेड़ के नीचे बिठाया है।'

'यह जो काँटों वाला पेड़ है, इसका नाम है संसार। जब भी कोई व्यक्ति इस पेड़ के नीचे आश्रय लेता है, तो पेड़ के काँटे गिरकर उसको चुभते हैं। इसी कारण व्यक्ति को दु:ख होता है और वह चंचल हो उठता है। संसार का भी यही स्वभाव है।'

अमरकोश में *संसरति इति संसार:* कहा गया है अर्थात् जहाँ पर हम सरकते हैं, रेंगते हैं, वह संसार है। इस संसार में निश्चित रूप से सुख और दु:ख, शांति और अशांति, दोनों का समावेश होता है। जब प्राणी इस संसार में जन्म लेता है, तब वह सुख और दु:ख, शांति और अशांति के स्वभाव को अपना लेता है और वही स्वभाव जीवनभर उसके साथ रहता है।

वृद्ध आगे कहता है, 'देखिये महाराज, जीव अपने आप में एक स्वतंत्र प्राणी है। हर जीव में आत्मा का वास है और आत्मा परमात्मा का अंश है। जब वह आत्मा इस संसार में एक रूप को धारण करती है तब वह जीवात्मा कहलाती है। जीवात्मा के रूप में वह संसार के भोगों का भोग करती है। संसार के भोग में सुख भी छिपा है, और दु:ख भी। उस भोग में शांति भी है और अशांति भी।'

'इस संसार में आकर मनुष्य संसार के भोगों, घर-परिवार, धन-सम्पत्ति, मान-सम्मान से अपना एक सम्बन्ध जोड़ लेता है। इसलिए वह भोगों के प्रभावों से मुक्त नहीं हो पाता। भोगों में लिप्त होकर मनुष्य अपने आप को भूल जाता है। भोग मनुष्य के मूल अस्तित्व, मूल स्वरूप को भुला देते हैं। जब मनुष्य अपने अस्तित्व को भूल जाता है, तब वह अपने आप को केवल कर्ता और भोक्ता के रूप में ही देखता है। लेकिन जब वह अपने अस्तित्व को नहीं भूलता और समझदारी के साथ संसार में रहता है, तब उस व्यक्ति को कहते हैं – द्रष्टा।'

'इस प्रकार इस संसार में व्यक्ति के दो रूप दिखलाई देते हैं। पहला, जो भोग में लिप्त है और दूसरा, जो भोग का साक्षी है। जो भोग में लिप्त है, वह कर्ता और भोक्ता कहलाता है। जो भोग का साक्षी है, वह द्रष्टा कहलाता है। देखा जाए तो भोग माया की अभिव्यक्ति है। माया का प्रभाव है या नहीं है, इसका पता कैसे चलेगा? मनुष्य भोग से अपने आप को मुक्त करता है या उसमें लिप्त

होता है, इसी बात से। भोग ही माया की अभिव्यक्ति है और यह माया मनुष्य के मन को भ्रमित कर देती है। जब मनुष्य का मन भ्रमित हो जाता है तब वह अपना वास्तविक स्वरूप भूलकर अपने को दूसरे रूप में देखने लगता है।'

मुक्ति का उपाय

इस प्रकार वृद्ध ने राजा को संसार के स्वभाव से अवगत कराया। तब राजा उस वृद्ध से पूछता है, 'जो मनुष्य इस संसार में आता है और माया के अधीन होकर भोगों में लिप्त हो जाता है, उसकी मुक्ति का क्या कोई उपाय नहीं?'

वृद्ध कहता है, 'मुक्ति का उपाय तो निश्चित रूप से है। समय-समय पर ईश्वर स्वयं अवतार लेकर मनुष्य की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। समय-समय पर संत-महात्मा धरती पर अवतरित होकर समाज को एक नई प्रेरणा और दिशा देते हैं।'

राजा उस वृद्ध से कहता है, 'मैं एक ऐसे असमंजस में था जिसका समाधान मुझे नहीं मिल रहा था। आप आये हो और मुझे संसार के बारे में बतला रहे हो। मैं तो यही मानूँगा कि आप ही मेरे गुरु हैं। आप मुझे जीवन के बारे में बतलाइये। जीवन में मेरा क्या कर्त्तव्य है, मुझे क्या करना है?'

वृद्ध कहता है, 'देखो राजन्! पहले तो तुम जान लो कि मनुष्य, प्रकृति और ईश्वर – ये तीनों अलग नहीं, एक हैं। ईश्वर से प्रकृति उत्पन्न होती है और हम सभी जीव प्रकृति के अंतर्गत आते हैं। इसलिए जीव, प्रकृति और ईश्वर, इन तीनों को एक ही सत्ता की अलग-अलग अभिव्यक्तियाँ जानो। अनन्त, अद्वितीय, निर्गुण, अचिंत्य सत्ता को ईश्वर कहते हैं। वह असीम, अनन्त, अचिंत्य सत्ता जब लीला के रूप में अपने आप को प्रकट करती है, तब उसका रूप प्रकृति का होता है।'

'ईश्वर अपने आप को अनेक रूपों में अभिव्यक्त करने के लिए प्रकृति का सहयोग लेते हैं, क्योंकि प्रकृति के द्वारा ही कर्म सम्पन्न हो पाते हैं। जीव प्रकृति के अधीन रहता है। जीव के जीवन का धर्म कर्म करना होता है। जब जीव प्रकृति के अधीन कर्मों को करता है, तब कर्म या तो उसे बन्धन की ओर ले जाते हैं या फिर मुक्ति की ओर। बन्धन की ओर कर्म कब ले जाएँगे? जब कर्म के प्रति अपेक्षा है, फल की आशा है। जब कर्म केवल धर्म, केवल कर्त्तव्य के रूप में सम्पादित होता है, उसमें फल की आशा नहीं रहती, तब कर्म मनुष्य को बन्धन से मुक्त करता है। इस प्रकार जब हम कर्म को धर्म रूप

में करते हैं, तब वहाँ पर मुक्ति है और जब अपने सुख के लिये करते हैं, तब वहाँ पर बन्धन है।'

'जीव इस संसार में आकर संसार से अपना सम्बन्ध जोड़ता है। जीव का दूसरे जीवों और संसार के साथ सम्बन्ध, उसकी मानसिकता और व्यवहार, ये सब माया के प्रभाव को दर्शाते हैं। जीव भोग-विषयों के पीछे भागता है। फल की प्राप्ति के लिये ही कर्म होता है। जब व्यक्ति के सभी प्रयास कर्म भोग एवं फल प्राप्ति के लिये हैं, तब निश्चित रूप से वासना, इच्छा, महत्त्वाकांक्षा अधिक प्रबल होती है और उसी में ही व्यक्ति लिप्त हो जाता है। मोह और ममता के कारण वह मूढ़ता के अधीन हो जाता है।'

'मोह मन की भ्रामक अवस्था है और यह भ्रम जीवन से सम्बन्धित है। लोग कहते हैं कि मुझे अपनी संतान, अपने घर-परिवार, अपने से मोह है। इसका मतलब यह कि आदमी खुद को ही सब कुछ मानता है, अपने सुख, अपने कर्म को ही प्राथमिकता देता है। इसी को मोह कहते हैं। संसार के विषय व्यक्ति के मन को अपनी ओर आकृष्ट कर मोहग्रस्त कर देते हैं।'

'जब मन में कोई इच्छा या वासना प्रकट होती है, तब उसके साथ मोह भी प्रकट होता है। जब किसी के साथ एक सम्बन्ध स्थापित होता है, तब मोह भी स्थापित होता है। व्यक्ति दूसरों को अपना मित्र या शत्रु मानने लगता है। ऐसा मोह कर्मों के कारण होता है। अगर कोई व्यक्ति ऐसा काम करे जिससे मुझे फायदा हो तो मैं उसको अपना मित्र मानता हूँ। और अगर कोई ऐसा काम

करे जिससे मुझे हानि हो, तो मैं उसे अपना शत्रु मानता हूँ। कर्मों के अवलोकन से यह निर्णय लिया जाता है कि कौन मित्र है और कौन शत्रु। कर्म ही इस संसार की प्रवृत्ति है। अगर संसार से तुम कर्म को हटा दो तो संसार, संसार नहीं रहेगा, और अगर स्वर्ग में तुम कर्म को ला दो, तो स्वर्ग संसार हो जाएगा।'

बूढ़ा व्यक्ति राजा को आगे बतलाता है, 'देखो, परमात्मा अपने आप में असीम और अनंत है। वह सत्य, चेतनता और आनन्द का स्रोत है। इसके विपरीत प्रकृति असत्य है। उसमें चेतनता नहीं, मूढ़ता है। आनंद नहीं, दु:ख है।' राजा पूछता है, 'यह कैसे?' बूढ़ा कहता है, 'सरल-सी बात है। तुम्हारे सामने आईना है जिसमें तुम अपना प्रतिबिम्ब देख रहे हो। लेकिन जो दिखलाई दे रहा है, वह केवल प्रतिबिम्ब है। वह तुम नहीं हो। तुम तो उससे अलग खड़े हो और अपने प्रतिबिम्ब को देखकर कहते हो कि वह मैं हूँ। लेकिन तुम्हें केवल आभास होता है कि वह मैं हूँ। तुम्हें ज्ञान है कि मैं आईने के सामने खड़ा हूँ, मैं अपना चेहरा देख रहा हूँ, पर वास्तव में आईने में जो प्रतिबिम्ब है, वह तुम नहीं हो, तुम्हारा शरीर नहीं है। वह केवल एक चित्र है, और कुछ नहीं। उसी प्रकार से ईश्वर एक स्वतंत्र सत्ता है और प्रकृति एक आईना है। जब प्रकृति के सामने ईश्वर आएगा तो ईश्वर का प्रतिबिम्ब उस आईने में दिखलाई देगा, और जब जीव आएगा तो उस जीव की छवि आईने में दिखलाई देगी।'

'जो ईश्वर अनादि, अनंत, अचिन्त्य और सर्वगुण-सम्पन्न है, जिसमें सत्य, चेतनता और आनंद है, उसी परमतत्त्व का एक अंश तुम्हारे भीतर भी है। जब तुम अपने इस ईश्वरीय अंश को भूलकर सांसारिक जीवन को ही सब कुछ मानते हो, तब दिक्कत होती है। दु:ख को तुम यह कहकर स्वीकार लेते हो कि दु:ख तो जीवन का साथी है। संघर्ष को अपना कर्म मानते हो। सबेरे से लेकर रात तक जीने के लिये संघर्ष करते रहते हो। यह सब अपनी जगह ठीक है, लेकिन अगर जीव को एक क्षण के लिये भी स्मरण हो जाए कि मैं यह सांसारिक व्यक्ति नहीं हूँ, बल्कि मुझमें परमात्मा का अंश विद्यमान है, जो आनंद, चैतन्यता और सत्य का अंश है, और उस अंश के साथ मैं अपना सम्बन्ध स्थापित कर लूँ, तो दु:ख से अवश्य मुक्ति मिल जाएगी।'

राजा वृद्ध से पूछता है, 'आप बहुत कुछ बता रहे हो, लेकिन क्या कोई विधिवत् उपाय है जिसके द्वारा मैं अपने आप को, प्रकृति, संसार और ईश्वर को समझ सकूँ।' बूढ़ा कहता है, 'हाँ! उपाय तो है। जीवन में सुख-शांति को प्राप्त करने का जो उपाय है, वह वास्तव में एक अनुष्ठान है, एक कर्म है।'

राजा कहता है, 'मुझे बताइये मैं कैसे कर्म करूँ ताकि मेरे जीवन में भी सुख-शांति-आनंद आए।' बूढ़ा राजा से कहता है कि ईश्वर ने मनुष्य को जो तरीका बताया है, मैं वही तरीका बतलाता हूँ।

गीता की शिक्षा

भारतीय संस्कृति में एक ऐसा ग्रंथ है जिसे हम लोग ईश्वर की साक्षात् वाणी कहते हैं। उस ग्रंथ में भगवान ने स्वयं मनुष्य को मुक्ति का मार्ग बताया है। जिस ग्रंथ की ओर मैं संकेत कर रहा हूँ, वह है श्रीमद् भगवद्गीता। अगर हम गौर करें तो देखेंगे कि अर्जुन की स्थिति भी उस राजा की तरह ही है।

युद्धभूमि में जब अर्जुन अपने स्वजनों को युद्ध के लिये तैयार देखकर शोक-संतप्त हो जाता है, तब वह अवसाद की अवस्था को प्राप्त करता है और कहता है कि 'यह युद्ध किस लिए! मैं समझ नहीं पाता हूँ कि मैं अपने ही लोगों को मारकर राज्य को हासिल करके किस प्रकार खुश हो जाऊँगा। मेरे जीवन में किस प्रकार सुख आएगा? मेरे सभी सम्बन्धी लड़ने को तैयार खड़े हैं। वे मारे जाएँगे, हो सकता है मैं भी मारा जाऊँ। क्या मालूम कौन जीतता है? लेकिन इस महा-संहार के बाद विजय किस काम की? अगर पाँच गाँव भी मिल जाते तो हम लोग आराम से रह सकते थे। लेकिन एक इंच धरती भी नहीं मिल रही है और इसी धरती के लिये हमें इतना बड़ा महायुद्ध करना पड़ रहा है।' इस प्रकार चिन्तन करके अर्जुन शोक संतप्त हो जाता है।

अर्जुन की यह स्थिति एक सामान्य जीव की अवस्था है। अर्जुन कर्ता और भोक्ता है। उसके गुरु श्रीकृष्ण हैं। वे कर्ता नहीं, द्रष्टा हैं; भोक्ता नहीं, साक्षी हैं। जब शोक में लिप्त होकर अर्जुन युद्ध करने की इच्छा का त्याग करता है, तब कृष्ण जी सोचते हैं कि अब गड़बड़ होने वाली है। इसलिए नहीं कि वह युद्ध नहीं करेगा। युद्ध हो या न हो, कोई जीते या हारे, क्या फर्क पड़ता है? लेकिन अर्जुन की मानसिकता एक ऐसी मनोवस्था को दर्शा रही है, जहाँ पर जीव अपने ज्ञान को खोकर मूढ़ता को प्राप्त कर लेता है। मूढ़ता में अवसाद को प्राप्त करके किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है।

इस अवसाद का मूल कारण अर्जुन का हर योद्धा के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध था। यह मेरे पितामाह हैं, वे मेरे भाई हैं, यह मेरे मामा हैं, वह मेरे चाचा हैं। अगर युद्ध के लिये अर्जुन के बंधु-बांधवों के बजाय दूसरे कोई राजा आते, तो अर्जुन के मन में विषाद उत्पन्न नहीं होता। अर्जुन के मन में विषाद

इसलिए उत्पन्न हुआ कि उसने अपनों को वहाँ पर देखा। अगर पराये लोगों को देखता तो शोक-संतप्त नहीं होता, बल्कि युद्ध करता। लेकिन अपनों को वहाँ पर देखकर उसे शोक होता है कि सब मारे जाएँगे। अपने सब सम्बन्धों को याद करके वह दु:ख को प्राप्त करता है।

तब श्रीकृष्ण अर्जुन के दु:ख और भ्रांति मिटाने के लिये जो चर्चा करते हैं, वही श्रीमद् भगवद्गीता में वर्णित है और वह अर्जुन के मन में धर्म और कर्त्तव्य पर आधारित एक नए चिन्तन को जन्म देती है। यहीं से गीता की शुरुआत भी होती है।

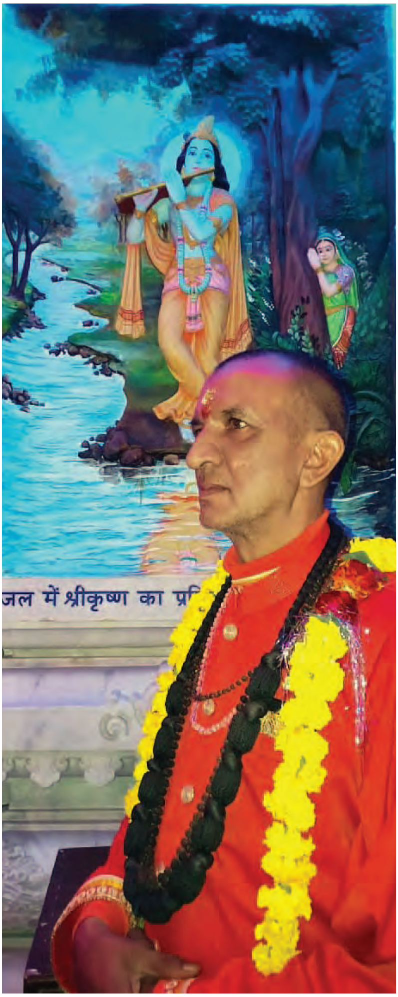

धर्म आधारित कर्म करना गीता का मूल है, उसका निचोड़ है। श्रीकृष्ण बार-बार अर्जुन से कहते हैं कि धर्म आधारित कर्म करते रहो। यहाँ पर वे सामान्य कर्म की ओर संकेत नहीं दे रहे हैं। धर्म जिस कर्म को निश्चित करता है, वह कर्म, कर्म नहीं होता, क्योंकि वह बाँधता नहीं है। वह कर्म मुक्ति का माध्यम बनता है। जबकि अधर्म जिस कर्म को निश्चित करता है, वह कर्म बाँधता है। इसलिए कृष्ण जी अर्जुन को बार-बार कहते हैं कि तुम धर्म द्वारा निर्धारित कर्म को करते रहो। उससे तुम बँधोगे नहीं, बल्कि उससे मुक्त हो जाओगे और तुम्हारा मन, चित्त और बुद्धि शांत रहेंगे। जब हम कर्म में लिप्त होते हैं, तब भोग हमें और भी पदार्थवादी बना देता है। लेकिन जब कर्म को कर्त्तव्य के रूप में अपनाते हैं, तब वह कर्म हमारे जीवन की रचनात्मक प्रतिभा को जाग्रत कर देता है। यही श्रीमद् भगवद्गीता का मूल विषय है।

परमहंस सत्यानन्द – मेरी स्मृतियाँ

स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती

जो कुछ हमने स्वामीजी से सुना, समझा और जाना है, उसमें से कोई शिक्षा हम अपने जीवन में उतार लें। उनका कोई एक आदर्श, चाहे वह उनका सेवाभाव हो, या कर्त्तव्यपरायणता या गुरु के प्रति निष्ठा, कुछ भी लेकर हम आज संकल्प लें कि हम इस तरह अपने जीवन को उनके प्रति समर्पित करते हैं। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

हम उनके साथ हर गुरु पूर्णिमा में रहे, जगह-जगह साथ गये, उनका सत्संग-प्रवचन सुना, बातें सुनीं, उनसे झगड़ा किया और उनसे दुलार भी पाया। उन महान् गुरु के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए हम उनके पीछे-पीछे यहाँ मुंगेर भी आ गये, उनका काम करते रहे और आज ऐसा दिन भी आया कि हम उनकी छाया-मात्र के लिए तरस रहे हैं। लेकिन हमारा यह संकल्प है कि वे हमारे साथ हैं, हमारा जीवन उन्हीं का जीवन है, हमारा सब कुछ उनका ही है। हमारा कुछ भी नहीं है, हम जो कुछ कर रहे हैं, उनके लिए ही कर रहे हैं।

इसी तरह जीवन बीतते-बीतते हमने जो देखा, सुना और समझा, उससे तो हम यही समझते हैं कि वे एक देव, महान् ऋषि, अद्भुत संत और महामानव हैं, उनके जैसे लोग आजकल दुनिया में हैं ही नहीं। उन्होंने अपने कितने रूप दिखाये। जब मैं उनके साथ रही, वे मेरे पिता थे, भाई थे। अब गुरु हैं, भगवान हैं, मेरे सर्वस्व हैं। मैं जब उन्हें याद करती हूँ तब अंदर से इतनी खुशी होती है कि कितनी भाग्यशाली हूँ मैं, इतने दिनों तक एक देवता के सम्पर्क और छत्र-छाया में रही, उनका काम करती रही। अभी भले ही कुछ कर नहीं सकती, लेकिन उनकी बातें तो कह सकती हूँ, उनके बारे में बता तो सकती हूँ। उनकी यात्रा चलती रहे, उनका काम होता रहे। *क्रमश:*

– 'मेरे आराध्य के चरणों में' से दिनश खरे, दुर्ग द्वारा संकलित

योग और आध्यात्मिक संस्कार

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग और आध्यात्मिक संस्कारों के सम्बन्ध को समझने के लिये पहले संस्कार को समझना होगा। संस्कार मन पर पड़ी छाप या जीवन की रूपरेखा है जिसके साथ हम आते हैं। जो विशेषतायें, लक्षण, आदतें और स्वभाव हमारा परिचय देते हैं, वे संस्कार कहलाते हैं। इन्हीं विशेषताओं के साथ हम जन्म से मृत्यु तक अपना पूरा जीवन जीते हैं। संस्कारों द्वारा आपके विचार, व्यवहार, समझ, अभिव्यक्तियाँ, प्रतिक्रियाएँ, सब कुछ निर्धारित होते हैं। सामान्यतः जीवन में संस्कारों का सम्बन्ध भौतिक वस्तुओं के साथ होता है। ये भौतिक संस्कार स्थूल इन्द्रियों और उनके विषयों से सम्बंधित होते हैं। लोगों में आध्यात्मिक संस्कार स्वाभाविक रूप से नहीं होते, उन्हें अपनाना पड़ता है। उसके लिये प्रयास करना पड़ता है, जबकि सांसारिक संस्कार स्वाभाविक रूप से व्यक्त होते हैं।

सांसारिक संस्कार मन की छः मुख्य विशेषताओं – काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य के द्वारा निर्देशित और प्रेरित होते हैं। जब आपका सम्बन्ध भौतिक जीवन से होता है तो आपके विचारों और क्रियाओं पर इनका प्रभाव पड़ता है, आपके मन और जीवन में विक्षेप आ जाते हैं। न तो विचारों में स्पष्टता होती है, न ही आध्यात्मिक मार्ग पर दृढ़ता।

योग का उद्देश्य आध्यात्मिक संस्कारों को विकसित करना है। सांसारिक संस्कार तो हमेशा रहेंगे। जब तक यह शरीर है, भौतिक आवश्यकताएँ रहेंगी। जब तक यह मन है, महत्त्वाकांक्षायें और इच्छाएँ रहेंगी। जब तक भावनायें हैं तब तक उन भावनाओं को संतुष्ट करने की आवश्यकता होगी। यह बदलने वाला नहीं है, लेकिन सांसारिकता में संलग्न रहने के साथ-साथ आपको आध्यात्मिक संस्कार, स्वभाव और गुण भी विकसित करने हैं।

आध्यात्मिकता

आध्यात्मिकता क्या है? कभी-कभी आध्यात्मिकता को धार्मिकता मान लिया जाता है, पर वास्तव में अध्यात्म और धर्म जीवन रूपी नदी के दो किनारे हैं जिनके बीच जीवन का जल बहता है। आध्यात्मिक किनारे का सम्बंध जीवन

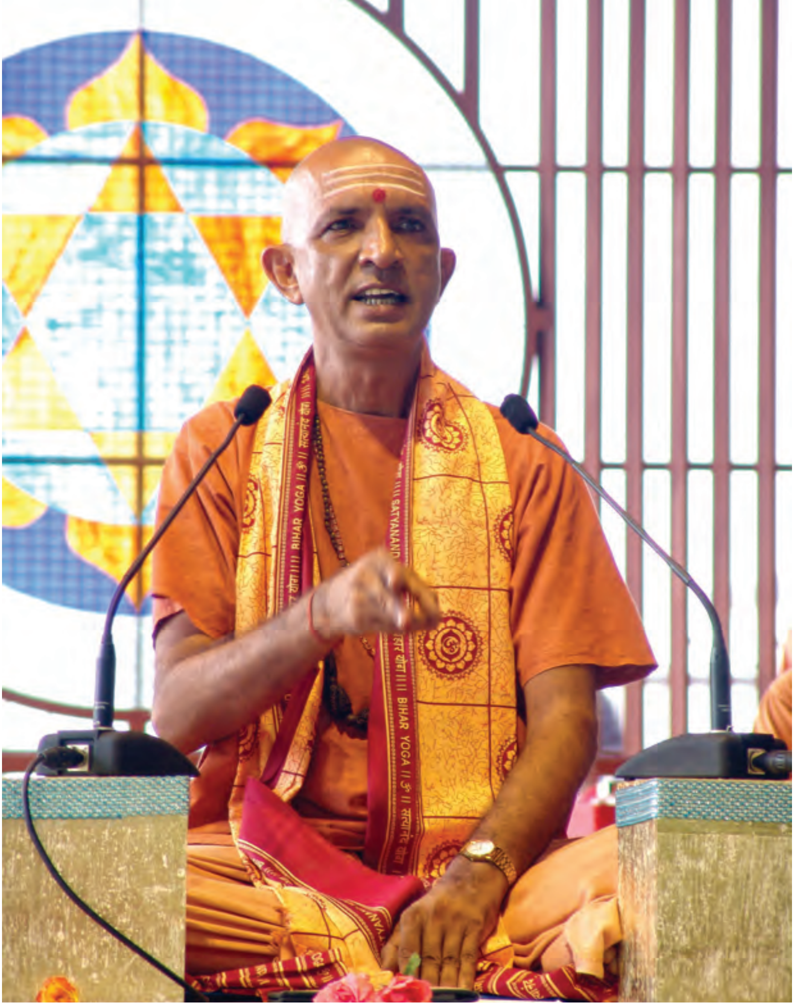

में सात्त्विक गुणों के पोषण से है, जबकि धार्मिक किनारे का सम्बंध जीवन में किसी दिव्य सत्ता की सजगता से है। धर्म में एक दिव्य स्वरूप को विशेष स्थान दिया जाता है, चाहे वह राम, कृष्ण, देवी, ईसा मसीह, अल्लाह या निराकार ब्रह्म हो। धार्मिकता में अनेक मत हैं और सभी एक ऐसी शक्ति को मानते हैं जो सृष्टि को नियंत्रित और संचालित करती है। दूसरी ओर, आध्यात्मिकता का ध्येय अपनी प्रकाशमान, सात्त्विक प्रकृति को प्रकट करना है।

सांसारिक वृत्तियों के कारण भौतिक जीवन की दिशा तामसिक होती है। आध्यात्मिक गुण सात्त्विक होते हैं, इसलिए आपको उनके विकास पर ध्यान देना है। आध्यात्मिकता से मुक्ति या ईश्वर की प्राप्ति होती है, यह विचार सही भी हो सकता है और नहीं भी, लेकिन निश्चित रूप से आपको अपनी

आंतरिक उज्ज्वल प्रकृति की अच्छी समझ प्राप्त हो जाती है। अध्यात्म आपको अपनी अनुभूति और अभिव्यक्ति की क्षमता के प्रति सजग करता है। जीवन में इसी बात का ध्यान रखना है। आध्यात्मिकता ईश्वर-प्राप्ति नहीं है, यह श्रद्धा, विश्वास और सकारात्मकता के साथ जीवन जीने की क्षमता है। अगर आप जीवन में श्रद्धा, विश्वास और सकारात्मकता के साथ चल सकते हैं तो आप शांति, प्रसन्नता और संतोष प्राप्त करेंगे, आपका जीवन आनंदमय होगा। आपको आध्यात्मिकता को इसी संदर्भ में देखना है, न कि ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग के रूप में।

आध्यात्मिकता व्यक्ति को बेहतर मानव बनाने का मार्ग है। आप जितने सात्त्विक और प्रकाशपूर्ण होंगे, दिव्य शक्ति आपको अपना उतना ही अच्छा माध्यम बनाएगी।

आसनों के अभ्यास और तनाव-मुक्ति के परे

आध्यात्मिक सजगता के इस स्तर तक आने के लिये श्री स्वामी सत्यानंद जी ने योग के बाद आत्मभाव का तरीका दिया है। योग और आत्मभाव, ये दोनों एक साथ चलते हैं। आपके स्वास्थ्य और ऊर्जा स्तर में सुधार से आपको सच्ची शांति और प्रसन्नता नहीं मिल सकती। मानसिक रूपान्तरण से ही यह सम्भव है। इसलिये आपको ऐसी विधि या पद्धति की आवश्यकता है जो आपके मन और स्वभाव को सुधारने में मदद करे। शरीर उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। हाँ, जीवित रहने के लिये यह आवश्यक है और स्वस्थ शरीर निश्चित रूप से बीमार शरीर से अच्छा है, लेकिन आप केवल शरीर पर ध्यान देकर आध्यात्मिक चेतना नहीं प्राप्त कर सकते। ध्यान, प्रार्थना या पूजा द्वारा भी यह प्राप्ति सम्भव नहीं।

लोग आसन करना पसंद करते हैं, क्योंकि वे गत्यात्मक और स्फूर्तिदायक होते हैं, और लोग उनसे स्वयं को जोड़ पाते हैं। लेकिन आसनों की अंतिम उपलब्धि केवल शारीरिक और प्राणिक है। आप जिन आसनों का अभ्यास करते हैं, उनसे आपको आखिर क्या लाभ हुआ है? सूर्य नमस्कार जैसा कोई अभ्यास शरीर और प्राणों के लिए अच्छा लगता है, आपको लगता है कि शरीर का अच्छा व्यायाम हो गया, लेकिन क्या इससे आपको अपने मन, भावनाओं या आध्यात्मिक चेतना को सुनियोजित करने में कोई मदद मिली है? नहीं।

लोगों को ध्यान करना भी अच्छा लगता है, क्योंकि यह वर्तमान क्षण की वास्तविकता से पलायन करने की अनुमति देता है। यह अभ्यासियों को ईश्वर या धर्म सम्बन्धी किसी सैद्धान्तिक विचार से जोड़ता है जिससे थोड़ी देर के लिये वे अपनी समस्याओं को भूल जाते हैं। कुछ समय तक वे तनाव-मुक्त हो जाते हैं और कहते हैं, 'ओह, अच्छा ध्यान लगा।' इन लोगों से यह पूछना चाहिए कि ध्यान के अभ्यास से क्या दीर्घकालीन प्रभाव हुआ है? दस, पंद्रह या बीस साल के ध्यान या मंत्र अभ्यास से जीवन में कोई आंतरिक प्राप्ति हुई है? क्या आप स्वयं को व्यवस्थित कर पा रहे हैं, अपनी प्रतिक्रियाओं को सुधार पा रहे हैं? मुझे नहीं लगता कि ध्यान ने आपको बदलने में मदद की है। आप में अभी भी वही भय और डर है, वही सीमित मान्यताएँ और विचारधाराएँ हैं। ध्यान ने चिंता और तनाव को दूर करने में थोड़ी मदद की होगी, लेकिन क्या आप में कुछ वास्तविक बदलाव आया है? क्या मंत्र के अभ्यास ने आप में कुछ परिवर्तन किया है? हो सकता है इसने आपको एकाग्र बनने या अपने इष्ट देवता का मानस-दर्शन करने या कुछ समय के लिये मन का विक्षेप रोकने में मदद की हो, लेकिन क्या इसने वह सच्ची शांति दी है जिसे सब प्राप्त करना चाहते हैं? नहीं। यदि ऐसा हुआ होता तो आपका मन, स्वभाव, प्रतिक्रियाएँ और अभिव्यक्तियाँ सब अलग होते।

अब तक आप योग के जिन अभ्यासों को करते आये हैं उन्होंने आपके जीवन की वास्तविक आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया है क्योंकि आपने उन्हें अपने जीवन से जोड़ा नहीं है। वे तभी जुड़ेंगे जब आप सकारात्मकता और अच्छाई से सम्बन्ध बनाने की आवश्यकता समझ जायेंगे। यह बात सभी पर लागू होती है। चिंता और कुंठा के बदले आपको सकारात्मकता और अच्छाई से जुड़ना है। आध्यात्मिक साधक की मनःस्थिति ऐसी ही होनी चाहिये। नकारात्मकता की बजाय सकारात्मकता से जुड़ना आध्यात्मिक साधक का गुण और स्वभाव होना चाहिए। नकारात्मकता से जुड़ना कौन-सी बड़ी बात है, सारा संसार यही करता है। सभी दु:खी-पीड़ित लोग ऐसा ही करते हैं। एक योगी, एक संन्यासी, एक साधक के रूप में आपको नकारात्मकता से निकलकर सकारात्मकता और प्रसन्नता से जुड़ने का प्रयास करना चाहिए। ऐसे प्रयास के अभाव से ही उपयुक्त वातावरण में रहने के बावजूद आपका विकास नहीं हुआ है। यही कड़वी सच्चाई है। इसका कारण आपका सीमित दृष्टिकोण है, विषय-भोग की कामनाएँ हैं।

अपूर्ण यौगिक ज्ञान

इस प्रवृत्ति के कारण लोगों ने योग के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष, यम और नियम को उपेक्षित छोड़ दिया है। महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग की शिक्षा दी जिसके पहले दो अंग यम और नियम हैं। महर्षि पतंजलि को हर कोई मानता है, फिर भी लोग यम-नियम को छोड़ देते हैं और सीधे आसन-प्राणायाम पर चले जाते हैं। प्रत्याहार और धारणा को छोड़ देते हैं और सीधे ध्यान की ओर चले जाते हैं। योग के शिक्षक और संस्थान महर्षि पतंजलि की बातें करते नहीं थकते, योग की महानता, सम्पूर्णता और समग्रता पर बोलते जाते हैं, पर अभ्यास में केवल आसन और प्राणायाम उपयोग में लाते हैं, सम्पूर्ण योग नहीं। इसलिए जीवन में यौगिक ज्ञान के बहुत बड़े अंश का अभाव है।

आप अपने जीवन में जो यौगिक ज्ञान उपयोग में लाते हैं, वह हठयोग के कुछ आसन, प्राणायाम व षट्कर्म और थोड़े बहुत राजयोग तक सीमित है। यह एक सामान्य बात है। यहाँ आश्रम में भी आसन-प्राणायाम की कक्षा में ज्यादा लोग आते हैं, ध्यान की कक्षा में कम और यम-नियम की कक्षा में तो कोई नहीं आता। कोई आ भी जाए तो भी यम और नियम का कभी प्रयोग नहीं करता। लोग समझते हैं कि यह सब उनके लिये नहीं है, वे शुद्ध-बुद्ध हैं, उन्होंने सब प्राप्त कर लिया है।

जीवन में ज्ञान के जिस बड़े अंश का अभाव है वह यम और नियम में निहित है। यम और नियम के प्रयोग द्वारा ही आप योग की सम्पूर्णता का

अनुभव कर सकते हैं। योग शास्त्रों में अनेक यम और नियम बताये गये हैं। महर्षि पतंजलि ने राजयोग में केवल पाँच यमों और नियमों की चर्चा की है, हालाँकि हठयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, कुण्डलिनी और क्रिया योग में और भी यम-नियम हैं। योग की प्रत्येक शाखा में उसके प्रयोजन अनुसार यम और नियम होते हैं।

सकारात्मकता से जुड़ना

लोग समझते हैं कि यम और नियम मात्र नैतिक शिक्षाएँ हैं। यह विचारधारा गलत है। यम-नियम मन की अभिव्यक्ति, व्यवहार और आदत से सम्बन्धित हैं। संघर्ष और तनाव के समय आप शांति की खोज करते हैं। तो क्यों न प्रेम, दया, सहानुभूति, सही समझ और प्रसन्नता प्राप्त करने का प्रयास भी किया जाए?

जीवन में सकारात्मकता से जुड़ न पाने के कारण ही आप उस सुंदरता का अनुभव नहीं कर पाते हैं जो जीवन मुक्तहस्त प्रदान करता है। नकारात्मकता से जुड़ना बहुत सरल है। आपके अंदर की नकारात्मकता फूट पड़ने के लिये केवल एक अवसर की प्रतीक्षा में रहती है, लेकिन आपमें सकारात्मकता से जुड़ने की रुचि कभी नहीं होती। नेल्सन मंडेला ने ठीक ही कहा है, 'लोग यदि किसी चीज से भयभीत रहते हैं तो वह उनके अंदर का प्रकाश ही है।'

लोग स्वयं के प्रकाशमान स्वरूप का सामना नहीं कर पाते हैं। आपमें से कितने लोग सात्त्विकता और सदाचार के प्रकाश के साथ जुड़े रह पाते हैं? इसे बारह घंटे आजमाकर देखिये। कल ही यह प्रयास कीजिये। यदि आप एक घंटे में असफल हो जाते हैं तो समझ लीजिये कि मंजिल दूर है, आपको कठिन परिश्रम की आवश्यकता है। अपने अस्सी वर्षों के संघर्षपूर्ण और कुंठाग्रस्त जीवन में कम-से-कम एक दिन के लिये आनंदपूर्ण, सहयोगपूर्ण और सद्भावपूर्ण जीवन बिताने का प्रयास कीजिये। यह यम और नियम के प्रयोग का आरम्भ होगा।

सभी आध्यात्मिक गुरु कहते हैं, 'अच्छे बनो और अच्छा करो।' यही आपके लिए कसौटी है। देखिये कि आज आप कितने अच्छे रहे। आपने दूसरों का कितना भला किया? किससे झगड़ा किया और किसको सहारा दिया? दोनों की तुलना कीजिये, प्रतिशत देखिये। आप पायेंगे कि आप एक अलग व्यक्ति हैं। वह नहीं जो आप अपने को समझते हैं – सदाचारी, विनम्र

और सौम्य, बल्कि तुलसीदासजी के शब्दों में – *मो सम कौन कुटिल खल कामी*। इस प्रकार यम-नियम ज्ञान का वह आयाम है जो प्रत्येक व्यक्ति के आध्यात्मिक जीवन से लुप्त है।

जीवनशैली में परिवर्तन

यम-नियम का सम्बन्ध जीवनशैली से है, क्योंकि ये बेहतर, सकारात्मक आदतों के प्रतिनिधि हैं। ये हमेशा आपको नकारात्मकता से हटाकर सकारात्मक आयाम से जोड़ते हैं। अगर हिंसा नकारात्मक है, तो अहिंसा से जुड़ो जो सकारात्मक है। यदि असत्य बुरा है, तो सत्य से जुड़ो जो अच्छा है। इस तरह यम और नियम आपको सदा सकारात्मक दिशा में ले जायेंगे, लेकिन फिर भी आप उस पथ पर नहीं चलते। इसलिये आपकी जीवनशैली में कोई परिवर्तन नहीं आता और आपका योगाभ्यास यंत्रवत् होता है।

बीस साल आसन-प्राणायाम करने के बाद आप कहते हैं, 'योग से मुझे क्या आध्यात्मिक लाभ हुआ? कुछ नहीं। हो सकता है मेरा शिक्षक सही न हो। हो सकता है मैंने गलत गुरु का चुनाव किया। हो सकता है जिस आश्रम में गया वह सही नहीं था। हो सकता है मुझे जो प्रशिक्षण मिला वह अनुपयुक्त रहा हो।' आप हमेशा दूसरों पर संदेह करते हैं, स्वयं पर नहीं, क्योंकि आपमें स्वयं को या अपनी सीमाओं को देख पाने की या अपनी प्रगति की जाँच करने की क्षमता नहीं है। ऐसे में आप अपनी मानसिक अवस्थाओं या आदतों में परिवर्तन करने की अपेक्षा कैसे रख सकते हैं?

ऐसी परिस्थिति में यह मत कहिये कि मैं योगाभ्यासी हूँ, बल्कि कहिये कि मैं आसन-प्राणायाम का अभ्यासी हूँ। यदि आप स्वयं को योगाभ्यासी कहते हैं तो आपको योग को समग्र रूप से देखना होगा और उसमें पूरी तरह संलग्न होना होगा। यहीं आपकी गम्भीरता, निष्ठा और प्रतिबद्धता सामने आएगी।

विचार से आरम्भ करें

संस्कार क्या है? सम्यक् आकार, अर्थात् आकार, रूप या व्यक्तित्त्व में सम्यकता। इससे मिलता-जुलता शब्द है संस्कृति, यानि सम्यक् कृति। जब आप कहते हैं, 'अमुक व्यक्ति सुसंस्कृत है' तो इसका अर्थ हुआ कि उस व्यक्ति के व्यवहार और कर्म समुचित हैं। इस प्रकार सम्यक् क्रिया संस्कृति है और सम्यक् आकार संस्कार है।

विचारों के द्वारा आपके स्वभाव को आकार मिलता है। आप जो सोचते हैं, वही करते हैं और वही बन जाते हैं। इसलिये आपको अपने विचारों को देखना और व्यवस्थित करना है। पहला परिवर्तन विचारों में आना है। इसके लिये सजग प्रयास होना चाहिये। अपनी विचार प्रक्रिया को बदलने के लिये विभिन्न यम-नियमों का प्रयोग किया जाता है। विचारों में बदलाव से फिर व्यवहार और कर्मों का रूपान्तरण होता है। अपने विचारों को अधिक उज्ज्वल और सात्त्विक बनाना संस्कार है, और अपने कर्मों को रचनात्मक बनाना संस्कृति है। यहाँ हम आध्यात्मिक विचारों के विकास की बात कर रहे हैं।

क्या आप इसे कर सकते हैं?

आध्यात्मिक विचारों का तात्पर्य जीवन में सद्गुणों के विकास और दुर्गुणों के निर्मूलन से है। यदि आप किसी व्यक्ति पर बिगड़ते हो, उस पर चीखते-चिल्लाते हो तो संकल्प लो, 'उस व्यक्ति पर मैं दुबारा कभी नहीं चिल्लाऊँगा', और उसी क्षण से इसपर अमल करना शुरू कर दो। ऐसा मत सोचो कि आज उस व्यक्ति पर चिल्लाकर उस पर जब चाहे बिगड़ने का अधिकार मिल गया। यह मानसिकता का एक सकारात्मक रूपान्तरण है। क्या आप ऐसा कर सकते हो? अगर आप में साहस है तो ऐसा करके दिखाओ। प्रमाणित करो कि आप ऐसा करने में सक्षम हो। यम-नियम का पालन आज और अभी से शुरू कर दो। यह आध्यात्मिक संस्कार का प्रारम्भ है।

– 17 जुलाई 2015, गंगा दर्शन

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

धारणा दर्शन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 460, ISBN: 978-81-86336-21-2

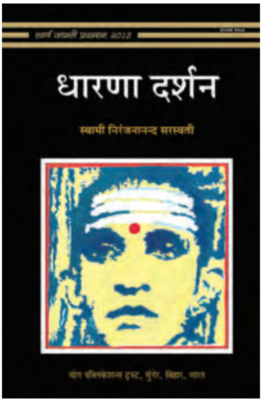

उपलब्ध

प्रस्तुत पुस्तक में स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती द्वारा सिखायी गयी यौगिक, तान्त्रिक और औपनिषदिक धारणा की अनेक साधनायें दी जा रही हैं। ये साधनायें प्रशिक्षण के उच्चतर स्तर की हैं, इन्हें यहाँ देने का कारण है कि अनेक उच्च एवं गम्भीर साधकों ने ध्यान के गहन आयामों में मार्गदर्शन की आवश्यकता प्रकट की है। इस संस्करण में प्रमुख विषय हैं – धारणा का महत्त्व, अभ्यास की विधियों का विस्तृत कक्षा-शिक्षण-अनुदेश तथा लय धारणा की विधियाँ।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

biharyoga.net तथा *satyamyogaprasad.net* पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/
योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2020-23
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

सभी ग्राहकों के लिए महत्त्वपूर्ण सूचना

आत्मस्वरूप

हरि: ॐ

हमें यह सुखद समाचार देते हुए हर्ष हो रहा है कि जनवरी 2021 से मासिक योगा (अंग्रेज़ी) तथा योगविद्या (हिन्दी) पत्रिकाएँ सभी ग्राहकों, सहयोगियों, योगप्रेमियों, भक्तों तथा आध्यात्मिक साधकों के लिए निम्नांकित वेबसाइटों पर नि:शुल्क उपलब्ध रहेंगी –

www.satyamyogaprasad.net

www.biharyoga.net

वर्तमान कोरोनावायरस महामारी और उससे उत्पन्न अनिश्चितता के कारण योगा और योगविद्या की प्रकाशित प्रतियाँ 2021 में ग्राहकों के लिए उपलब्ध नहीं रहेंगी। इसलिए 2021 में इन पत्रिकाओं के लिए नए सदस्यता आवेदन या पुरानी सदस्यता को बढ़ाने के आवेदन स्वीकार **नहीं** किए जा रहे हैं। अत: इन पत्रिकाओं के लिए सदस्यता आवेदन **मत** भेजिए।

पत्रिकाओं सम्बन्धी परिस्थिति की जानकारी आपको समय-समय पर मिलती रहेगी।

इस बीच श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती और श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षाओं को ग्रहण कर उन्हें अपनी दिनचर्या में आत्मसात् एवं अभिव्यक्त कीजिये ताकि आपका जीवन उदात्त और उन्नत बन सके।

आपके स्वास्थ्य, कल्याण और शांति के लिए श्री स्वामी सत्यानन्द जी के आशीर्वाद सहित,

ॐ तत्सत्

सम्पादक